॥ श्रीः ॥



पराशरस्मृतिः

अर्थात्-

(धर्मशास्त्रीय लघुपाराशरी)

सरल सुबोध भाषाटीका सहित

जिसको

शिवलाल-गणेशीलाल ने

स्वकीय "लक्ष्मीनारायण" यन्त्रालय

मुरादाबाद में

मुद्रित करवाकर प्रकाशित किया।

[illegible], सन् १९२[illegible]



॥ श्रीगणेशायनमः ॥

लघुपाराशरीस्मृतिः



दो०–परब्रह्म देवर्षिगण, गुरु चरणन शिर नाय।
पाराशरि भाषा करौं, विधि हरि हर उरलाय ॥१॥



अथातो हिमशैलाग्रे देवदारुव-नालये। व्यासमेकाग्रमासीनमपृच्छन्नृषयःपुरा ॥१॥

पूर्वकाल में हिमाचल के शिखरपर देवदारुके तरुवरोंसे अलंकृत वनके विषय पवित्र स्थान में एकाग्र चित्त बैठे हुए श्रीव्यासजी महाराज से ऋषियों ने प्रश्न किया ॥ १ ॥

मानुषाणां हितं धर्मं वर्तमाने कलौयुगे। शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत ॥ २ ॥

हे श्रीव्यासजी! कलियुग के वर्तमान होने पर जो धर्म, शौच, तथा आचार मनुष्यों को हितकारी हैं वह यथावत् (विधिपूर्वक) हम से कहिये ॥ २ ॥

तच्छ्रुत्वाऋषिवाक्यं तु सशिष्यो-ग्न्यर्कसन्निभः।प्रत्युवाच महातेजाः श्रुतिस्मृतिविशारदः ॥ ३ ॥

तदनंतर शिष्यों सहित, श्रुति स्मृतिके यथार्थ जानने वाले, महातेजस्वी, अग्नि सूर्य के समान प्रकाशमान, श्रीव्यास जी ऋषियों के वचन को सुनकर बोले३

न चाहं सर्वतत्वज्ञः कथं धर्मं वदाम्यहम्। अस्मत्पितैव पृष्टव्य इति व्याससुतोऽब्रवत् ॥ ४ ॥

मैं सब धर्मों के तत्त्वों को नहीं जानता, किस प्रकार धर्मकहूँ, अतएव हमारे पितासे पूछना चाहिये इसप्रकार व्यास जीने कहा ॥ ४ ॥

ततस्ते ऋषयःसर्वे धर्मतत्वार्थकांक्षिणः। ऋषिंव्यासं पुरस्कृत्य गता बदारिकाश्रमम् ॥ ५ ॥

तब धर्म तत्व के जानने की इच्छा

करनेवाले वे सब ऋषि व्यास जी को आगे करके बदरिकाश्रम को गये॥ ५ ॥

नाना पुष्पलताकीर्णं फलपुष्पैरलंकृतम्। नदीप्रस्रवणोपेतं पुण्यतीर्थोपशोभितम् ॥ ६ ॥

वह आश्रम नाना प्रकार के पुष्पों की लताओं से परिपूर्ण, फल पुष्पों से अलंकृत, नदी और झरनों से विभूषित, पवित्र तीर्थों से शोभित ॥ ६ ॥

मृगपक्षिनिनादाढ्यं देवतायतनावृतम्। यक्षगंधर्वसिद्धैश्च नृत्यगीतैरलंकृतम् ॥ ७ ॥

मृग और पक्षियों के शब्दोंसेपूरित, देव मन्दिरों से आवृत, यक्ष, गंधर्वों के नृत्य गान से शोभित और सिद्धगणों से अलंकृत था ॥ ७ ॥

तस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रं पराशरम्। सुखासीनं महातेजा मुनिमुख्यगणावृतम् ॥ ८ ॥

उस आश्रम में ऋषियों की सभा के विषय मुख्य, मुनिगणोंके मध्य में सुख पूर्वक बैठे हुए, शक्ति ऋषि के पुत्र, महातेजस्वी मुनिवर पराशरजीका ॥ ८ ॥

कृतांजलिपुटोभूत्वा व्यासस्तु ऋषिभिः सहाप्रदक्षिणाभिवादैश्च स्तुतिभिः समपूजयत् ॥ ९ ॥

व्यासजी ने ऋषियों सहित हाथ जोड़, प्रदक्षिण अभिवादन और स्तुति पूर्वक पूजन किया ॥ ९ ॥

अथ संतुष्टहृदयःपराशरमहामुनिः।आह सुस्वागतं ब्रूहीत्यासीनो मुनिपुंगवः ॥ १० ॥

तदनंतर संतुष्ट है हृदय जिनका, ऐसे महामुनि पराशरजी बोले कि-तुम भली प्रकार कुशल पूर्वक आये? ॥ १० ॥

कुशलं सम्यगित्युक्त्वा व्यासः पृच्छत्यनंतरम् ॥ यदि जानासि मे भक्तिं स्नेहाद्वा भक्तवत्सल ११

कुशल प्रश्न के अनन्तर सब प्रकार कुशल है! ऐसा कहकर व्यासजी ने पूछा कि-हे भक्तवत्सल ! यदि आप मेरी भक्ति जानतेहैं, तौ या मेरेस्नेह से ११

धर्मं कथय मे तात अनुग्राह्योह्यहं तव॥श्रुता मे मानवाधर्मा वाशिष्ठाः काश्यपास्तथा १२

हे तात! मुझ से धर्मों का वर्णन कीजिये, क्योंकि मैं आप का कृपापात्र हूँ, अतएव आप को मुझ पर अवश्य कृपा करनी चाहिये, मैंने स्वायंभुव मनु,वशिष्ठ, कश्यप ॥ १२ ॥

गार्गीया गौतमीयाश्च तथा चोशनसा स्मृताः । अत्रेर्विष्णोश्च संवर्ताद्दक्षादंगिरसस्तथा॥ १३॥

तथा गर्गाचार्य, गौतम, शुक्राचार्य, अत्रि,विष्णुऋषि,संवर्त, दक्ष, अंगिरा १३

शातातपाच्च हारीताद्याज्ञवल्क्यात्तथैव च । आपस्तंबकृता-

धर्माः शंखस्य लिखितस्य च॥ १४॥

और शातातप, हारीत, याज्ञवल्क्य, आपस्तंब, शंख, लिखित ॥ १४ ॥

कात्यायनकृताश्चैव तथा प्राचेतसान्मुनेः। श्रुता ह्येते भवत्प्रोक्ताः श्रौतार्थामे न विस्मृताः॥ १५॥

कात्यायन,वाल्मीकि आदि ऋषियोंके कहेहुए धर्मशास्त्र और आप के कहेहुए वेदोक्त धर्म श्रवण किये हैं, वे संपूर्ण धर्म मुझको विस्मरण नहीं हुएहैं ॥ १५ ॥

अस्मिन्मन्वंतरे धर्माः कृतत्रेतादिके युगे। सर्वे धर्माः कृते जाताःसर्वे नष्टाः कलौयुगे॥१६॥

किंतु इस मन्वंतरके विषय कृतयुग और त्रेतादि युगों के जो२धर्म थे, उन२युगों में शक्ति विशेष होने के कारण उन२धर्मों का बर्ताव रहा,और अबकालियुग में शक्ति की हानि होने के कारण वे सम्पूर्ण धर्म लुप्त होगये ॥ १६ ॥

चातुर्वर्ण्यसमाचारं किंचित्साधारणं वद। चतुर्णामपि वर्णानां कर्तव्यं धर्मकोविदैः॥ १७॥

अतएव चारों वर्णों का पृथक्२ मुख्य धर्म तथा चारों वर्णों का मिश्रित धर्म (सत्य बोलना, चोरी न करना, पर स्त्रियोंको मातृवत् देखना,हिंसा न करना इत्यादि धर्म जो सब वर्णोंको कर्तव्यहैं उनको मिश्रित धर्म कहतेहैं) वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥

ब्रूहि धर्मस्वरूपज्ञ सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात्। व्यासवाक्यावसानेषु मुनिमुख्यः पराशरः॥ १८॥

हे धर्मस्वरूपके जानने वाले! चारों वर्णोंमें धर्मके जानने वालों करके करने योग्य जो सूक्ष्म और स्थूलधर्महैं, उनका विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये, व्यासजी के वचन के अनंतर मुनिवर पराशरजी १८

धर्मस्य निर्णयं प्राह सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात् ॥ १९ ॥

सूक्ष्म और स्थूल धर्मोंका निर्णय विस्तार पूर्वक वर्णन करने लगे ॥ १९ ॥

वक्ष्यमाणधर्मतत्वग्रहणाय श्रोतृसावधानतां विधत्ते।

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि शृण्वंतु मुनयस्तथा। कल्पे कल्पे क्षयः सत्याब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥२०॥

वक्ष्यमाण धर्मोंका तत्व ग्रहण करनेके लिये श्रोताओंको सावधान होनाचाहिये।

हे पुत्र! तथा हे मुनियों! सुनो,कल्प२ मे प्रलय होताहै तथापि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, विद्यमान रहतेहैं ॥ २० ॥

श्रुतिस्मृतिसदाचारनिर्णेतारश्च सर्वदा। न कश्चिद्वेदकर्ता च वेदस्मर्ता चतुर्मुखः॥ २१ ॥

और वे सर्वदा (सबकल्पों की आदिमें) श्रुति, स्मृति और सदाचारका निर्णय करतेहैं परन्तु वेदका कर्ता कोई -

नहीं, ब्रह्माजी कल्प की आदिमें पूर्ववत् वेदको स्मरण करके मनु तथा ऋषियोंके द्वारा प्रकाशित करतेहैं ॥ ११ ॥

तथैव धर्मान्स्मरति मनुःकल्पांतरेन्तरे। अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेपरे ॥ २२ ॥

और कल्प२के विषय जो२मनु होतेहैं वेभी उसी प्रकार पूर्वकी नाई धर्मों को स्मरण करके प्रवृत्त करतेहैं,युगोंके अनुसार शक्ति की वृद्धि और हानिके कारण कृतयुगमें मनुष्यों के धर्म और प्रकार के, त्रेतामें और प्रकार के और द्वापरमें और प्रकार के रहे॥ १२ ॥

अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपानुसारतः[1] ॥ तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥ २३ ॥

अब कलियुग में मनुष्योंकी शक्ति के अनुसार ऋषियों ने और प्रकार के धर्म वर्णन कियेहैं, कृतयुगमें शक्ति विशेष होनेके कारण तप श्रेष्ठ रहा, त्रेता में ज्ञान ॥

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेव कलौयुगे। कृते तु मानवाधर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः ॥ २४ ॥

द्वापर में यज्ञकी विशेषता रही, अब कलियुगमें शरीरादिक की शक्ति न्यून होनेके कारण केवल दान की अधिकता है, कृतयुग (सत्ययुग) में मनुजी के धर्म मुख्य रहे, त्रेता में गौतम के ॥ २४ ॥

द्वापरे शंखलिखिताःकलौ पाराशराः स्मृताः। त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ॥ २५ ॥

द्वापर में शंख और लिखित ऋषियों के कहे हुए धर्म मुख्य रहे, अब कलियुग में पराशरके कहेहुए धर्म अत्यंत उपयोगी हैं। संसर्ग दोष लगने के कारण कृतयुग में पाप करनेवाले के देशकोभी त्याग देते थे, त्रेता में ग्रामको ॥ २५ ॥

द्वापरे कुलमेकं तु कर्तारं तु कलौयुगे। कृते संभाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च ॥ २६ ॥

द्वापर में पाप करनेवाले के कुल मात्र को छोड देते थे और कलियुग में केवल कर्त्ता को छोडते हैं, कृतयुग में पापी के संभाषण ही से पतित होजाता था, त्रेता में स्पर्श से ॥ २६ ॥

द्वापरेत्वन्नमादाय कलौ पतति कर्मणा। कृते तात्क्षणिकः शापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः ॥ २७ ॥

द्वापर में अन्न लेकर पतित होता था और कलियुग में कर्म करके पतित होता है, कृतयुग में तत्काल शाप लगता था त्रेता में दशदिन में ॥ १७ ॥

द्वापरे चैकमासेन कलौ संवत्सरेण तु। अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते ॥ २८ ॥

[1] "युगरूपानुहासत." इत्यपि पाठान्तरम् ॥

द्वापर में एक मासमें शापका फल होता था और अब कलियुग में वर्ष भर में शाप फलता है, कृतयुग में श्रद्धाकी अधिकता के कारण आप जाकर दान देते थे, त्रेता में बुलायकर श्रद्धा पूर्वक देते थे २८

द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ। अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव तु मध्यमम् ॥ २९ ॥

द्वापर में याचना करने वाले को श्रद्धा करके देतेथे और कलियुगमें सेवा कराकर दान देते हैं। आप जाकर दानदेना उत्तम है, बुलाकर देना मध्यम है ॥२९॥

अधमं याचमानाय सेवादानं तु निष्फलम् । जितोधर्मोह्यधर्मेण सत्यं चैवानृतेन च ॥ ३० ॥

याचना करनेसे देना निकृष्टदान है और सेवा कराकर दान देना निष्फल है। कलियुग में धर्मका अधर्मसे पराजय होजाता है और सत्यका झूंठ से पराजय होता है ॥ ३० ॥

जिताश्चौरैश्चराजानः स्त्रीभिश्च पुरुषाजिताःसीदंति चाग्निहोत्राणिगुरुपूजाप्रणश्यति ॥

राजाका बहुधा चोरों से पराजय होता है और पुरुषों का स्त्रियों से तिरस्कार होता है, कलियुग में अग्निहोत्र और गुरुपूजनादि नष्टप्राय होजाते हैं ॥

कुमार्यश्च प्रसूयंते तस्मिन्कालियुगे सदा । कृते त्वस्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मासमाश्रिताः ३२

कलियुग में कुमारी भी संतान उत्पन्न करती हैं, कृतयुग में प्राण अस्थि गतथे और त्रेतामें मांसके आश्रय रहे ३२

द्वापरे रुधिरं चैव कलौ त्वन्नादिषु स्थिताः युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः ॥ ३३ ॥

द्वापरमें प्राण रुधिरके आश्रयथे और अब कलियुगमें अन्नादिक में स्थित हैं अर्थात् अन्नादिक की प्राप्ति न होनेसे प्राण नष्ट होजाते हैं प्रत्येक युगमें जो२ धर्म हैं और उन २ युगोंमें युगानुरूप जो२ ब्राह्मणहैं ॥ ३३ ॥

तेषां निंदा न कर्त्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः। युगे युगे तु सामर्थ्यं शेषं मुनिविभाषितम् ३४

उनकी निंदा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि-आचरण करने वाले वे ब्राह्मण युगानुसार हैं। जिस२ युगमें जैसी२ सामर्थ्य रही वैसेही प्रायश्चित्तादि धर्म मनु गौतमादि मुनीश्वरोंने वर्णन किये ॥ ३४ ॥

पराशरेण चाप्युक्तं प्रायश्चित्तं विधीयते । अहमद्यैव तत्सर्वमनुस्मृत्यब्रवीमि वः ॥ ३५ ॥

अब मैं पराशरजी के कहे हुए संपूर्ण प्रायश्चित्तादि धर्मोंको स्मरण करके तुमसे कहताहूं ॥ ३५ ॥

चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृण्वंतु ऋपिपुंगवाः। पराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ ३६ ॥ चिंतितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च। चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः ॥ ३७ ॥

हे मुनीश्वरों! परम पवित्र पापोंका नाश करने वाला पराशरजीका संमत चारों वर्णोंका आचारजो ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणों के निमित्त तथा धर्म स्थापन करने के लिये चिंतन किया गया है। तिसको श्रवण करो, आचार चारों वर्णों के धर्मों का पालन करने वालाहै, क्योंकि-आचरण विना किये केवल धर्मके कथनमात्रहीसे धर्मका पालन नहीं होसक्ता ३७

आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः। पट्कर्माभिरतोनित्यं देवतातिथिपूजकः। हुतशेषं तु भुंजानो ब्राह्मणोनावसीदति ३८

जिनका देह आचार से भ्रष्ट है अर्थात् जिन्होंने धर्माचरण का त्याग करदिया है उन से धर्म पराङ्मुख होजाता है। जो ब्राह्मण नित्य पट्कर्म में निरत, देवता और अतिथियों का पूजन करने वाला और होम के शेषका भोजन करने वाला है, वह दुःखको प्राप्त नहींहोता॥३८

संध्यास्नानं जपोहोमो देवतानां च पूजनम्। आतिथ्यं वैश्वदेवं च पट्कर्माणि दिने दिने३९

स्नानपूर्वक संध्योपासन तथा गायत्र्यादि मंत्रोंका जप, हवन, देवपूजन, अतिथि सेवा और बलिवैश्वदेव, ये षट् कर्म नित्य करने चाहियें ॥ ३९ ॥

इष्टोवा यदि वा द्वेष्योमूर्खः पंडितएव वा। संप्राप्तोवैश्वदेवांते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ४०

मित्र हो वा शत्रु, मूर्ख हो वा पंडित, अतिथि के लक्षणों से संपन्न जो पुरुष बलिवैश्वदेव के अंत में आवै, उसकी सेवा करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ४०

दूराच्चोपगतं श्रांतं वैश्वदेव उपस्थितम्। अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः ॥ ४१ ॥

दूर से आया हुआ और थका हुआ जो पुरुष बलिवैश्वदेव के अंत में आकर उपस्थित हो उसको अतिथि जानना चाहिये जो कभी पहिलेभी आया हो वह अतिथि नहीं है ॥ ४१ ॥

नैकग्रामीणमतिथिं संगृह्णीत कदाचन। अनित्यमागतोयस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ ४२ ॥

एक ग्राम के रहनेवाले को आतिथ्य के लिये कभी ग्रहण न करै, क्योंकि-पहिले कभी उसका दर्शन नहीं हुआ है, इसकारण से उसे अतिथि कहतेहैं ४२

अतिथिं तत्र संप्राप्तं पूजयेत

स्वागतादिना । तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ॥ ४३ ॥

अपने स्थान पर प्राप्त हुए अतिथिको कुशल प्रश्नादि पूर्वक आसन देकर और चरण प्रक्षालन करके पूजन करै ॥४३॥

श्रद्धया चान्नदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च । गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद् गृही ॥ ४४ ॥

गृहस्थी को उचित है, कि–श्रद्धापूर्वक अन्नदान देकर और प्रेम पूर्वक कुशल प्रश्न करके जाते हुए अतिथि को कुछ दूरतक पहुंचाकर प्रीति उत्पन्न करै४४

अतिथिर्यस्य भग्नाशोगृहात्प्रतिनिवर्तते । पितरस्तस्य नाश्नंति दशवर्षाणि पञ्च च ॥४५॥

जिस के घरसे अतिथि निराश होकर फिर जाताहै उस के पितर पंदरह वर्षतक उसके दियेहुए श्राद्ध संबंधी अन्नादिकों को ग्रहण नहीं करते ॥ ४५ ॥

काष्ठभारसहस्रेण घृतकुंभशतेन च । अतिथिर्यस्य भग्नाशस्तस्य होमोनिरर्थकः ॥ ४६ ॥

जिसके स्थानसे अतिथि निराश गयाहो उसका सहस्रभार काष्ठ और सौ कलश घृतसे होम करना निरर्थकहै ॥ ४६ ॥

सुक्षेत्रे वापयेद् बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम् । सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्युप्तं दत्तं न नश्यति ॥ ४७ ॥

बीज को अच्छे खेत में बोवै और धनका दान सुपात्र को दे, अच्छे क्षेत्रमें बोया हुआ अन्न और सुपात्रको दिया हुआ दान, नष्ट नहीं होता ॥ ४७ ॥

नपृच्छेद् गोत्राचरणं न स्वाध्यायं श्रुतं तथा । हृदये कल्पयेद् देवं सर्वदेवमयोहि सः ॥ ४८ ॥

अतिथि से गोत्र,आचरण तथा आपने किन २ शास्त्रों का अध्ययन वा श्रवण किया है, इत्यादिक प्रश्न न करै क्योंकि–अतिथि देवस्वरूप होता है इसकारण उसे देववत् जानकर उसका सन्मानकरै॥

अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वश्चातिथिस्तथा । वेदाभ्यासरतो नित्यं त्रयोऽपूर्वे दिनेदिने ॥ ४९ ॥

सुव्रती अर्थात् यम,नियमादि युक्त तथा चांद्रायणादि व्रतोंका करनेवाला ब्राह्मण, अतिथि, तथा वेदाभ्यासी, ये तीनों दिन२ अपूर्व ही हैं अर्थात् ये तीनों नित्य सन्मान के योग्य हैं ॥ ४९ ॥

वैश्वदेवे तु संप्राप्ते भिक्षुकेगृहमागते । उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत् ॥ ५० ॥

यदि बलिवैश्वदेव के आरंभ करने के समय कोई भिक्षुक अर्थात् संन्यासी वा ब्रह्मचारी तथा अतिथि अपने स्थान पर आवै तौ बलिवैश्वदेव के निमित्त अन्नको अलग करके शेष अन्न में से भिक्षा देकर भिक्षुक को विसर्जन करै५०

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ । तयोरन्नमदत्वाच भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥५१॥

यति और ब्रह्मचारी ये दोनों पक्वान्न की भिक्षा के अधिकारी हैं उनको अन्न दिये विना भोजन करके चांद्रायण व्रत करने से शुद्ध होता है ॥ ५१ ॥

दद्याच्च भिक्षात्रितयं परिव्राट् ब्रह्मचारिणाम् । इच्छया च ततो दद्याद्विभवे सत्यवारितः ॥५२ ॥

संन्यासी और ब्रह्मचारियों को तीन भिक्षा अवश्य देनी चाहियें यदि अधिक ऐश्वर्यवान् हो तो निरंतर इच्छापूर्वक भिक्षा देदे ॥ ५२ ॥

यतिहस्ते जलं दद्याद्भैक्ष्यं दद्यात्पुनर्जलम् । तद्भैक्ष्यं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥५३॥

यति के हाथ में प्रथम जल दे तदनंतर भिक्षा दे फिर जल दे, ऐसा क्रम है वह भिक्षाका अन्न सुमेरु पर्वत के तुल्य है और वह जल समुद्र के तुल्य है ॥५३॥

यस्यच्छत्रं हयश्चैव कुंजरोहसमृद्धिमत् । ऐंद्रस्थानमुपासीत तस्मात्तं न विचारयेत् ॥ ५४ ॥

जिस संन्यासी के पास छत्र और हाथी घोडा आदि वाहनहों और वह समृद्धिमान् इंद्र के स्थान का अनुभव करता हो तौ उसको संन्यासी न विचारे अर्थात् ऐसा संन्यासी सन्मान करने योग्य नहींहै॥

वैश्वदेवकृतं पापं शक्तोभिक्षुर्व्यपोहितुम् । न हि भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवोव्यपोहति ॥ ५५ ॥

बलिवैश्वदेव संबंधी पाप को भिक्षुक दूर करसक्ताहै, भिक्षुक के सन्मान करने से बलिवैश्वदेव की विधि में कुछ त्रुटि रहजावे तो वह पाप भिक्षुक (अतिथ्यादि जिनका वर्णन पूर्व होचुका) के सन्मान करने से शांत होजाता है परंतु बलिवैश्वदेव के कारण भिक्षुक का सन्मान सम्यक् प्रकार से न हो तो उसके दोष को बलिवैश्वदेव नष्ट नहीं करसक्ता ॥५५॥

अकृत्वा वैश्वदेवं तु ये भुंजते द्विजातयः । तेषामन्नं न भुंजीत काकयोनिं व्रजंति ते ॥ ५६ ॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, बलिवैश्वदेव विना किये भोजन करते हैं, वे काक योनि को प्राप्त होते हैं, अतएव उनके अन्न का भोजन करना योग्य नहीं है ५६

अकृत्वा वैश्वदेवंतु भुंजते ये द्विजाधमाः । सर्वे ते निष्फलाज्ञेयाः पतंति नरकेऽशुचौ ॥ ५७ ॥

जो द्विजाधम बलिवैश्वदेव किये विना भोजन करते हैं उनके सब कर्म निष्फल होजाते हैं और वे अशुचि नाम नरकमें पड़तेहैं ॥ ५७ ॥

वैश्वदेवविहीनाये आतिथ्येन बहिष्कृतः । सर्वे ते नरकं यांति

काकयोनिं व्रजंति च ॥ ५८ ॥

जो बलिवैश्वदेव क्रिया करके हीन हैं और अतिथि सेवामी नहीं करते वे संपूर्ण पुरुष नरक को प्राप्त होते हैं और नरक भोगने के पश्चात् काक योनिको प्राप्त होतेहैं ॥ ५८ ॥

शिरोवेष्ट्य तु योभुंक्ते दक्षिणाभिमुखस्तु यः ॥वामपादकरः स्थित्वा तद्वै रक्षांसि भुंजते ॥ ५९ ॥

जो मनुष्य शिरको वस्त्रादिसे वेष्टित करके तथा वाम चरण पर हाथ धरकर दक्षिण दिशाको मुख करके भोजन करतेहैं, उसको राक्षसी भोजन कहते हैं, अर्थात् वह भोजन तामसी होजाता है॥५९॥

यतये कांचनं दत्वा तांबूलं ब्रह्मचारिणे । चौरेभ्योप्यभयं दत्वा दातापि नरकं व्रजेत् ॥ ६० ॥

संन्यासीको सुवर्णआदिक धनका दान करनेसे तथा ब्रह्मचारी को तांबूल देनेसे और चोरोंको अभय दान देनेसे दाता भी नरक को प्राप्त होता है ॥ ६० ॥

शुक्लवस्त्रं च यानं च तांबूलं धातुमेव च । प्रतिगृह्य कुलं हन्यात्प्रतिगृह्णाति यस्य च ॥ ६१ ॥

संन्यासी आदिक श्वेतवस्त्र, वाहन और तांबूल तथा धनादिक को प्रतिग्रह लेकर अपने और जिस से प्रतिग्रह लेते हैं उसके भी कुलका नाश करते हैं ॥ ६१ ॥

चौरोवा यदि चांडालः शत्रुर्वा पितृघातकः। वैश्वदेवे तु संप्राप्तेसोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥ ६२ ॥

चोर हो वा चांडाल, शत्रु हो वा पितृघाती जो बलिवैश्वदेवके समय प्राप्त हो वह अतिथि स्वर्गप्राप्ति कराने वाला है ॥

न गृह्णाति तु योविप्रःअतिथिं वेदपारगम् । अदत्त चान्नमात्रं तु भुक्त्वा भुंक्ते तु किल्बिषम्॥६३॥

जो ब्राह्मण वेदपारंगत अतिथि को ग्रहण नहीं करते और उसे बिना अन्न जल दिये भोजन करतेहैं वे पापका भोजन करतेहैं अर्थात् वे पुरुष पापी हैं॥६३॥

ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निरूपममकंटकम् । वापयेत्सर्वबीजानि सा कृषिः सर्वकामिका ॥ ६४ ॥

ब्राह्मण का मुख अनूपम कंटकादिसे रहित उत्तमक्षेत्रहै उसमें संपूर्ण बीजों को बोवै वह ब्राह्मणके मुखरूपी कृषि संपूर्णकामनारूप फलोंकी उत्पन्न करनेवालीहै॥

सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम् । सुक्षेत्रे च सुपात्रेच ह्युप्तं तन्न विनश्यति ॥ ६५ ॥

पुरुष को उचित है, कि–श्रेष्ठ क्षेत्र में बीज बोवै और सुपात्र को धनका दान दें अच्छे खेतमें और सुपात्र में बोयाहुआ बीज नष्टनहीं होता ॥ ६५ ॥

अव्रताह्यनधीयाना यत्र भैक्षचराद्विजाः ॥ तं ग्रामं दंडयेद्राजा चौरभक्तप्रदोहि सः ॥ ६६ ॥

जिस ग्राममें व्रत और वेदाध्ययन रहित ब्राह्मण भिक्षा वृत्ति करते हैं उस ग्राम को राजा दंडदे, नहीं तो वहराजा चोरोंको भाग देनेवाला होगा क्योंकि-जिसप्रकार धर्मानुसार प्रजा राजाको षष्ठांश भाग देती है उसीप्रकार तपस्वीब्राह्मणों को क्षत्रियादिकों से भाग मिलना चाहिये यदि क्षत्रियादिक ब्राह्मणों की आजीविका सेवादिक न करेंगे तो ब्राह्मण अवश्य ही भिक्षा वृत्ति करेंगे अतएव वे ग्रामवासी क्षत्रिय वैश्यादिक राजा करके दंड देनेके योग्य हैं ॥ ६६ ॥

क्षत्रियोहि प्रजारक्षन् शस्त्रपाणिः प्रदंडवान् । निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत् ॥ ६७ ॥

क्षत्रिय हाथ में शस्त्र ग्रहण किये हुए दुष्टों को उग्र दंड देकर प्रजा की रक्षा करताहुआ, शत्रु सेनाको जीतकर पृथ्वी का धर्म से पालन करै ॥ ६७ ॥

न श्रीः कुलक्रमायाता भूषणोल्लिखितापि वा । खड्गेनाक्रम्य भुंजीत वीरभोग्यां वसुंधराम् ॥ ६८ ॥

अपने कुलके क्रमानुसार प्राप्त हुई जो लक्ष्मी है वह लक्ष्मी वीरता न होने के कारण स्थिर नहीं है और न भूषण धारण करने से क्षत्रिय की शोभा होती है किन्तु पृथ्वी शूरवीर राजाओं करके भोगने योग्यहै अतएव खड्ग करके जीती हुई भूमि को भोगै ॥ ६८ ॥

पुष्पं पुष्पं विचिनुयान्मूलच्छेदं न कारयेत् । मालाकारइवारामे न यथांगारकारकः ॥ ६९ ॥

जैसे माली उपवनमें से पुष्प फलादिकों को ग्रहण करता है किंतु अग्नि लगाने वालेकी नाई वृक्षों का मूल छेदन नहीं करता उसी प्रकार राजा को उचित है, कि-प्रजा से थोडा २ अपना भाग लेकर प्रजाकी रक्षा करै सर्वापहारी नहो ॥ ६९ ॥

लाभकर्म तथा रत्नं गवां च परिपालनम् । कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥ ७० ॥

व्याज लेना, रत्नोंका क्रय विक्रय करना, गोपालन अर्थात् गौओंकी रक्षा करना और उनसे जो वृषभादिक उत्पन्न हों उनको बेचकर आजीविका करना खेतीऔर व्यापार करना यह वैश्य की वृत्ति है ॥ ७० ॥

शूद्रस्य द्विजसुश्रूषा परमोधर्मउच्यते । अन्यथा कुरुते किंचित्तद्भवेत्तस्य निष्फलम् ॥ ७१ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णों की सेवा करकै निर्वाह करना शूद्रका परम धर्म है, अन्य क्रियाओंके करनेका शूद्रको अधिकार नहीं है ॥ ७१ ॥

लवणं मधुतैलं च दधितक्रं घृतं

पयः । नदुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात्सर्वेषु विक्रयम् ॥ ७२ ॥

लवण, मधु (शहत) तेल तथा दही मट्ठा और घृत दुग्धादि संपूर्ण रसोंके वेचने से शूद्रजातिको दूषण नहीं लगता॥

विक्रियन्मद्यमांसानि ह्यभक्षस्य च भक्षणम् । कुर्वन्नगम्यागमनं शूद्रः पतति तत्क्षणात् ॥७३॥

मद्य वा मांसको बेचने से और अभक्ष्य वस्तु के भक्षण करने से तथा अगम्या स्त्रीमें गमन करने से शूद्र भी तत्काल पतित होजाता है ॥ ७३ ॥

कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च । वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्य नरकं ध्रुवम् ॥ ७४ ॥

इतिश्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

कपिला अर्थात् सुवर्ण के समान रंग वाली गौ का दुग्धपान करने से और ब्राह्मणीमें गमन करने से तथा वेदाक्षर का विचार करने से शूद्र को निश्चय नरककी प्राप्ति होती है ॥७४॥

इतिश्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकाया प्रथमोऽध्याय ॥१॥

अतः परं गृहस्थस्य कर्माचारं कलौ युगे । धर्मं साधरणं शक्त्या चातुर्वर्ण्याश्रमागतम् ॥ १ ॥

इसके अनंतर कलियुग में गृहस्थ के कर्म आचार और यथा शक्ति चारों वर्ण तथा चारों आश्रमोंका मिश्रित धर्म ॥१॥

तं प्रवक्ष्याम्यहं पूर्वं पराशर वचो यथा । षट्कर्मसहितो विप्रः कृषिकर्म च कारयेत् ॥ २ ॥

जैसाकि-पराशरजीने कहा है वर्णन करते हैं। जो ब्राह्मण षट् कर्म करके युक्त हो और कृषि करता हो ॥ १ ॥

क्षुधितं तृषितं श्रांतं बलीवर्दन योजयेत् । हीनांगं व्याधितंक्लीवं वृषं विप्रो न वाहयेत् ॥ ३ ॥

वह भूखे प्यासे और थके हुए बैल को हल में न जोड़े, अंगहीन, रोगी, तथा नपुंसक बैल को न जोते ॥३॥

स्थिरांगं नीरुजं तृप्तं सुनर्दं षंढवर्जितम् । वाहयेद्दिवसस्यार्द्धं पश्चात्स्नानं समाचरेत् ॥ ४ ॥

जो दृढ अंगवाला, रोग रहित, तृप्त (छकाहुआ) पुष्ट और नपुंसकता रहित हो उस वृषभको मध्यान्ह पर्यंत जोतकर कार्य ले अधिक कार्य न ले उसके उपरांत स्नानादिक कर्म करै ॥ ४ ॥

जपं देवार्चनं होमं स्वाध्यायं चैवमभ्यसेत् । एकद्वित्रिचतुर्विप्रान्भोजयेत्स्नातकान् द्विजः ॥५ ॥

जप, देवपूजन और होम तथा वेदाध्ययनका अभ्यास करता रहै,एक दो तथा

तीन वा चार स्नातक (पूर्ण ब्रह्मचर्य करके गृहस्थाश्रम को प्राप्त होने वाले) ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ५ ॥

स्वयं कृष्टे तथाक्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः । निर्वपेत्पंचयज्ञांश्च क्रतुदीक्षां च कारयेत् ॥ ६ ॥

जो धान्य अपने जोते हुए खेत में उत्पन्न हुए हों अथवा अपने परिश्रमसे संचय किये हों उन धान्यों से पंचयज्ञोंको करता रहै और विशेष यज्ञादिकोंको भी करै ॥ ६ ॥

तिलारसानाविक्रेया लोहलाक्षादयस्तथा । विप्रैश्च फलपुष्पानि नीलरक्तांशुकानि च ॥ ७ ॥

ब्राह्मणों को उचित है, कि-तिल और संपूर्ण प्रकारके रस तथा लोह लाक्षादिक फल पुष्प तथा नील वा रक्तवर्ण के वस्त्रों का विक्रय न करै ॥ ७ ॥

ब्राह्मणश्चेत्कृषिं कुर्यात्तन्महादोषमाप्नुयात् । हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं मध्यमं स्मृतम् ॥ ८ ॥

ब्राह्मण को खेती करने में बड़ा पाप होता है परंतु जिस हल में आठ वृषभ हों वह हल धर्मपूर्वक उत्तम है और छह वृषभवाला मध्यम है ॥ ८ ॥

चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं वृषघातिनाम् । द्विगवं वाहयेत्पादं मध्याह्ने तु चतुर्गवम् ।९।

हल में चार वृषभ जोतनेवाले दयाहीन समझे जाते हैं और दो वृषभ जोतनेवाले गोहिंसक हैं, दो वृषभ वाले हल से पहर भर दिनचढे पर्यंत जोतै और चार वृषभ वाले से मध्यान्ह तक जोतै ॥९॥

षड्गवं तु त्रियामाहेऽष्टभिः पूर्णं तु वाहयेत् । न याति नरकेष्वेवं वर्तमानस्तु वै द्विजः ॥१०॥

छह वृषभों को हल में जोतकर तीसरे प्रहर पर्यंत कार्य ले और आठवृषभ वाले हल से सायंकाल तक जोतै, इस प्रकार वृत्ति करने वाला ब्राह्मण नरक में नहीं जाता ॥ १० ॥

दानं दद्याच्च वै तेषां प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् । संवत्सरेण यत्पापं मत्स्यघाती समाप्नुयात् ॥११॥

ऐसे ब्राह्मणों को दान दे वह दान प्रशंसनीय और स्वर्गका देने वाला है जो पाप वर्षभर में मत्स्यघात करने से होता है ॥ ११ ॥

अयोमुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लांगली । पाशकोमत्स्यघाती च व्याधः शाकुनिकस्तथा ॥१२॥

वही पाप जिस हल के काष्ठ के अग्र में लोहा लगा हो उस हल से जोतनेवाले को एकही दिन में होता है, विना अपराध फांसी देनेवाला, मत्स्यघाती, मृगादिकों की हिंसा करने वाला तथा पक्षियों का घात करने वाला ॥ १२ ॥

प्रदाता कर्षकश्चैव पंचैते सम-
भागिनः। कंडनी पेषणी चुल्ली
उदकुंभी च मार्जनी ॥ १३ ॥

और जो कृषि करने वाला ब्राह्मण दान न देता हो ये पांचों पाप करने में समान हैं, ओखली, चक्की, चूल्हा तथा जल भरे हुए पात्रों के रखने का स्थान और बुहारी ॥ १३ ॥

पंचसूना गृहस्थस्य अहन्य-
हनि वर्तते। वैश्वदेवोबलिर्भिक्षा
गोग्रासोहंतकारकः ॥ १४ ॥

इन पांचों वस्तुओं के द्वारा नित्यप्रति हिंसा होती है यदि गृहस्थी नित्यप्रति बलिवैश्वदेव और देव पूजन करता रहै और अतिथ्यादिकों को भिक्षा देता रहै और भोजन करने से पहिले जो भोजन रसोईमेंबनेहों उन सबमें से थोड़ा२ भोजन गोत्रों को भी सत्कार पूर्वक दिया करै तथा देव पितरों के निमित्त भी सोलह ग्रास की हंतकार निकाल कर सुपात्र ब्राह्मण तथा गौ आदिक को दिया करै ॥ १४ ॥

गृहस्थः प्रत्यहं कुर्यात्सूनादोषैर्न
लिप्यते। वृक्षं छित्वा महीं भित्वा
हत्वा च कृमिकीटकान् ॥ १५ ॥

तो वह गृहस्थी ऊपर कहे हुए हिंसाओं के दोष से लिप्त नहीं होगा कृषि करनेमें वृक्षों का छेदन और पृथ्वी का भेदन (विदीर्णता) होना है और हलके द्वारा कृमि इत्यादिक असंख्यजीव जंतु मरते हैं ॥ १९ ॥

कर्षकः खलु यज्ञेन सर्वपापैः
प्रमुच्यते। योन दद्याद् द्विजाति-
भ्योराशिमूलमुपागतः ॥ १६ ॥

इन पापों से छूटनेके निमित्त खेती करने वाले को यज्ञादिक अवश्य करने चाहियें वा जो कृषि करने वाला अन्नकी राशि का प्रथम भाग सुपात्र ब्राह्मणों को नहीं देता ॥ १६ ॥

सचौरः सच पापिष्ठो ब्रह्मघ्नं तं
विनिर्दिशेत्। राज्ञे दत्वा तु षड्-
भागं देवानां चैकविंशकम् १७

उसे चोर और महापापी तथा ब्रह्महिंसाकरने वाले के समान जानना चाहिये, कृषि करने वाला छठाभाग राजा को दे और इक्कीसवां भाग देवतों के अर्पणकरै ॥ १७ ॥

विप्राणां त्रिंशकं भागं सर्वपापैः
प्रमुच्यते। क्षत्रियोपि कृषिं कृत्वा
देवान्विप्रांश्च पूजयेत् ॥ १८ ॥

और तीसवां भाग ब्राह्मणों को दे तो वह संपूर्ण पापों से छूटता है, यदि क्षत्रिय खेती करै तो वह भी इसी प्रकार देवता और ब्राह्मणादिकों का भागदे। १८।

वैश्यः शूद्रस्तथा कुर्यात्कृषिवा-

णिज्यशिल्पकम्। विकर्म कुर्वते शूद्रा द्विजसुश्रूषयोज्झिताः॥१६॥

वैश्य और शूद्रभी कृषि वाणिज्य और शिल्पकर्म करें, जो शूद्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों की सेवा का त्याग करके निषिद्ध कर्म करते हैं ॥ १९ ॥

भवंत्यल्पायुपस्ते वै निरयं यांत्यसंशयम्। चतुर्णामपि वर्णानामेषधर्मः सनातनः ॥२० ॥

इतिश्री पाराशरीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः॥ २ ॥

उनकी आयु स्वल्प होती है और वे नरक को प्राप्त होते हैं इस में संदेह नहीं, चारों वर्णों का यही सनातनधर्म है २०

इति श्रीपाराशरीये धर्म्मशास्त्रे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्याय. ॥ २ ॥

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा। दिनत्रयेण शुध्यंति ब्राह्मणाः प्रेतसूतके ॥ १ ॥

इस के अनन्तर जन्म और मरण में जो सूतक और आशौच होता है उसकी शुद्धि को कहते हैं, मृतक के आशौच में ब्राह्मण तीनदिन में शुद्ध होते हैं १

क्षत्रियोद्वादशाहेन वैश्यः पंचदशाहकैः। शूद्रः शुध्यति मासेन पराशरवचोयथा ॥ २ ॥

और क्षत्रिय बारहदिन में शुद्ध होते हैं, वैश्य पंद्रहदिन पर्यंत अपवित्र रहता है और शूद्र की शुद्धि एक मास में होती है ऐसा पराशरजी का वचनहै।२।

उपवासेन विप्राणामंगशुद्धिश्च जायते। ब्राह्मणानां प्रसूतौ तु देहस्पर्शो विधीयते ॥ ३ ॥

ब्राह्मणों के अंग की शुद्धि उपवासादिकों करके होजाती है और जिन ब्राह्मणों के स्थान में जन्म का पुत्रादिक के सूतक हुआ हो उन ब्राह्मणों के देह स्पर्श करने का दोष नहीं है ॥ ३ ॥

जातो विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रोमासेन शुध्यति ॥ ४॥

जन्म सूतक में ब्राह्मण दशदिन में और क्षत्रिय बारह दिन में तथा वैश्य पंद्रहदिन में और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है ॥ ४ ॥

एकाहाच्छुद्धयते विप्रो योग्निवेदसमन्वितः। त्र्यहात्केवलवेदस्तु हीनोहि दशभिर्दिनैः ॥५॥

जो ब्राह्मण वेदपाठी हैं और नित्य अग्निहोत्र करते हैं वे एकदिन में ही शुद्ध होजाते हैं और जो केवल वेद ही करके युक्त हैं वे तीन दिन में शुद्ध होते हैं और जो वेद तथा अग्निहोत्र दोनों करके हीन हैं वे दश दिनतक अशुद्ध रहते हैं ॥ ५ ॥

जन्मकर्मपरिभ्रष्टः संध्योपास-

नवर्जितः। नाम धारकविप्रस्तु दशाहं सूतकी भवेत् ॥ ६ ॥

जो ब्राह्मण अपने जन्म समय से ही नित्य नैमित्तिकादिक कर्मों से हीन हैं और संध्योपासन भी नहीं करते ऐसे नाम धारक ब्राह्मण (जो केवल नाम मात्र ही से ब्राह्मण कहलाते हैं) दश दिन पर्यंत अशुचि रहते हैं ॥ ६ ॥

अजागावो महिष्यश्च ब्राह्मणी नवसूतिका। दशरात्रेण संशुध्येद् भूमिस्थं च नवोदकम् ॥ ७ ॥

बकरी, गाय, भैंसे तथा प्रसूता ब्राह्मणी और भूमिपर स्थित वर्षा का नवीन जल ये सब दशदिन में शुद्ध होते हैं ॥ ७ ॥

एक पिंडास्तु दायादाः पृथग्दारनिकेतनाः। जन्मन्यपि विपत्तौ च तेषां तत्सूतकं भवेत् ॥ ८ ॥

सपिंड दायाद अर्थात् धनादिक का भागलेने वाले जो पुत्र पौत्रादिक होते हैं उन के स्थान पृथक् २ हों तो भी जन्म और मरण में उनको आशौच होताहै ।८।

तावत्तत्सूत्रकं गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु। दायाद्विच्छेदमाप्नोति पंचमोवात्मवंशजः ॥ ९ ॥

गोत्र में भी दशही दिन तक का सूतक रहताहै चौथी पीढी तककी संतान अर्थात् एक प्रपितामह तक की संतान एक गोत्र में कहलातीहै पांचवीं पीढी वाला पुरुष धनादिक के भाग का अधिकारी नहीं है इसलिये उसे दश दिन तक का सूतक नहीं होता,क्योंकि–चौथी पीढीके उपरांत वंश संज्ञा होतीहै ॥ ९ ॥

चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षण्निशापुंसिपंचमे। षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे तु दिनत्रयात् ॥१०॥

चौथी पीढी वाला पुरुष दश दिन में, पांचवीं पीढ़ी वाला छहदिन में,छठी पीढ़ी वाला पुरुष चारदिन में और सातवीं पीढ़ी वाला तीनदिन में शुद्ध होताहै ॥१०॥

भृग्वग्निमरणे चैव देशांतरमृते तथा। बाले प्रेते च संन्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते ॥ ११ ॥

जो पुरुष पर्वत से गिरकर तथा अग्नि में जलकर मृत्यु को प्राप्त हुआहो अथवा जिस की मृत्यु परदेश में हुईहो उसके सूतक में और बालक वा सन्यासीकी मृत्यु होने में शीघ्र शुद्धि होतीहै ॥ ११ ॥

देशांतरमृतः कश्चित्सगोत्रः श्रूयते यदि। न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥१२॥

यदि कोई सगोत्री देशांतर में मृत्यु को प्राप्त हुआहो तो तीन दिन का आशौच नहीं होता किंतु जब उसकी मृत्यु का वृत्तांत श्रवण करै तब शीघ्र स्नान करने से एक दिन रात में ही शुद्ध होजाताहै।१२।

देशांतरगतोविप्रः प्रयामात्

कालकारितात् । देहनाशमनुप्राप्तिस्तिथिर्न ज्ञायते यदि ॥१३॥

जो ब्राह्मण परदेश में जाकर कालवश से मृत्युको प्राप्त हुआ हो यदि उस के मृत्यु की तिथि ज्ञात न हो ॥ १३ ॥

कृष्णाष्टमी त्वमावास्या कृष्णा चैकादशी च या । उदकं पिंडदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत् ॥१४॥

तो कृष्णपक्षकी अष्टमी वा अमावास्या तथा कृष्णपक्ष की एकादशी को उसके निमित्त जलदान और पिंडदान तथा श्राद्ध करै ॥ १४ ॥

अजातदंता ये बाला ये च गर्भाद्विनिसृताः । नतेषामग्निसंस्कारोनाशौचं नोदकक्रिया ।१५।

जिनबालकों के दांत नहीं जमे हों औरजो गर्भ से उत्पन्न होतही मृत्युकोप्राप्त हुएहों उन का अग्निसंस्कार और आशौच तथा जल दान नहीं होता ॥ १५ ॥

यदिगर्भोविपद्येत स्रवते वापि योषितः । यावन्मासस्थितो गर्भो दिनंतावत्तु सूतकम् ॥ १६ ॥

यदि गर्भस्राव तथा गर्भपात हो तो जितने मासका गर्भ हो उतने ही दिनों का सूतक होताहै ॥ १६ ॥

आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पंचमषष्ठयोः । अतऊर्द्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ॥ १७ ॥

यदिचारमासमें गर्भगिरे तो उसे गर्भस्रावकहतेहैं और पांचवें वा छठे मासमें गर्भ गिरनेको 'गर्भपात' कहते हैं । तदनंतर छठे माससे दशमें मास पर्य्यंत प्रसव कहलाता है प्रसवमें दश दिनका सूतक मानना उचित है ॥ १७ ॥

दन्तजाताह्यजाताश्च कृतचूडाश्च संस्थिताः अग्निसंस्करणं तेषां त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ १८ ॥

जिन बालकोंका चूडाकर्म होगया हो उनके दांत जमे हों वा न जमे हों उन बालकोंकी मृत्यु होने में अग्निसंस्कार करना चाहिये और तीनदिन का आशौच मानना उचितहै ॥ १८ ॥

आदंताज्जन्मतः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता ।त्रिरात्रमुपनीतस्य दशरात्रमतःपरम् ॥१९॥

दांत जमने से पूर्व मृत्यु हो तो शीघ्र स्नानमात्र से शुद्धि होजातीहै और चूडाकर्म से पहिले मृत्युहो तो एक दिन रात में शुद्धि होती है। यज्ञोपवीत होनेसे पूर्व मृत्यु हो तो तीन दिन में शुद्धि होती है और यज्ञोपवीत होनेके अनंतर दशदिन में शुद्धि होती है ॥ १९ ॥

ब्रह्मचारी गृहे येषां हूयते च हुताशनः । संपर्कं चेन्न कुर्वंति न तेषां सूतकं भवेत् ॥ २० ॥

जिन के घरमें कोई पुरुष ब्रह्मचारी हों तथा जिनके घर नित्य-प्रति अग्निहोत्र

होता हो और प्रसूता स्त्री से स्पर्शादिक न करते हों तो उनको सूतक नहीं होता २०

संपर्क्काद्दुष्यते विप्रो जनने मरणे तथा। संपर्क्काच्च निवृत्तस्य न प्रेतं नैव सूतकम् ॥ २१ ॥

जन्म और मरण में ब्राह्मण प्रसूता स्त्री और मृतक के स्पर्शादिक करने से दूषित होता है जो स्पर्शादिक नहीं करता उसे जन्म वा मरण में सूतक नहीं होता ॥२१॥

शिल्पिनः कारुका वैद्या दासी दासाश्च नापिताः राजानः श्रोत्रियाश्चैव सद्यः शौचाः प्रकीर्तिताः॥

शिल्पवृत्ति करने वाले कारुक (हलवाई आदिक) तथा वैद्य, दासी तथा दास, नाई, राजा और वेदपाठी ये सम्पूर्ण शीघ्र शुद्ध होजाते हैं ॥ २२ ॥

सव्रतः सत्रपूतश्च आहिताग्निश्च यो द्विजः। राज्ञश्च सूतकं नास्ति स्नानपूताः प्रकीर्तिताः२३

जो ब्राह्मण व्रतोंकरके युक्त तथा यज्ञों करके पवित्र है और नित्य अग्निहोत्र करता है उस ब्राह्मण को तथा राजाको सूतक नहीं होता क्योंकि–यह सब स्नान ही करके पवित्र होजाते हैं॥

प्रसवे गृहमेधी तु न कुर्यात्संकरं यदि। दशाहाच्छुध्यते माता त्ववगाह्यपिताशुचिः ॥ २४ ॥

यादि गृहस्थी वर्णसंकर सन्तान को उत्पन्न न करै तो प्रसव में माता दशदिन में शुद्ध होती है और पिता स्नानमात्र से शुद्ध होजाता है ॥ २४ ॥

सर्वेषां शावमाशौचं मातृपित्रोस्तु सूतकम्। सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिताशुचिः२५

मृतक का आशौच तौ कुटुम्बमात्र को होता है और जन्मसूतक माता पिता दोनों को होता है, तिस में भी सूतक विशेष करके माता ही को लगता है क्योंकि–पिता तौ केवल आचमन करने ही से शुद्ध होजाता है ॥ २५ ॥

यदि पत्न्यां प्रसूतायां संपर्कं कुरुते द्विजः। सूतकं तु भवेत्तस्य यदि विप्रश्च वेदवित् ॥ २६ ॥

जो ब्राह्मण प्रसूता स्त्री से संसर्ग करता है उसे सूतक अवश्य होता है, चाहे वह ब्राह्मण वेदों का जानने वाला भी क्यों न हो ॥ २६ ॥

संपर्क्काज्जायते दोषो नान्यो दोषोस्ति वै द्विजे। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संपर्कं वर्जयेद्बुधः ॥२७॥

ब्राह्मण को संसर्ग ही से दोष होता है यादि वह संसर्ग न करै तौ कुछ दोष नहीं होता, अतएव संपूर्ण यत्नों करके विद्वान् को संसर्ग का त्याग करना चाहिये ॥ २७ ॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वंतरामृतसू-

तके। पूर्वसंकल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ॥ २८ ॥

यदि विवाह उत्सव, और यज्ञादिक के मध्य में किसी सपिंडादि के मृत्यु होनै के कारण सूतक होजाय तो पहिले से संकल्प किया हुआ द्रव्य जो किसी को देने के निमित्त रक्खा है दूषित नहीं होता है ॥ १८ ॥

अंतरा तु दशाहस्य पुनर्मरणजन्मनी। तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्पूर्वं न गच्छति ॥ २९ ॥

यदि दश दिन के मध्यमें किसी दूसरे पुरुष का जन्म वा मृत्यु हो तो ब्राह्मण उसी समय तक अशुचि रहता है जिस समय तक पहिले पुरुष के जन्म वा मृत्यु से अशुचि रहता हो ॥ २९ ॥

ब्राह्मणार्थं विपन्नानां गवार्थं प्राणदायिनाम्। आहवेषु विपन्नानामेकरात्रमशौचकम् ॥ ३० ॥

जिनकी मृत्यु ब्राह्मण और गौ के निमित्त हुई हो अथवा जो संग्राम में मृत्यु को प्राप्त हुए हों उनका आशौच एक दिन रात का होता है ॥ ३० ॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलभेदिनौ। परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखोहतः ॥ ३१ ॥

संसार में ये दो पुरुष सूर्यमण्डल की भेदन करके ब्रह्मलोक को जाते हैं एक तौ योग करके युक्त संन्यासी और दूसरा जो रण में सन्मुख स्थित रहकर मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥

यत्र यत्र हतःशूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः। अक्षयांल्लभते लोकान् यदि क्लीवं न भाषते ॥ ३२ ॥

शत्रुओं से घेरे जाने पर भी जो शूर वीर नपुंसकता के वचन नहीं बोलते वे चाहे जिस (शुद्ध वा अशुद्ध) स्थान में मारे गये हों परन्तु निश्चय अक्षय लोकों को प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥

संन्यस्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा स्थानाचलति भास्करः। एषमे मंडलं भित्वा परं स्थानं प्रयास्यति ३३

संन्यासी, ब्राह्मण को देखकर सूर्यभी अपने स्थान से चलायमान होजाता है कि-यह मेरे मंडल को भेदन करके परमपद को प्राप्त होगा ॥ ३३ ॥

यस्तु भग्नेषु सैन्येषु विद्रवत्सु समंततः। परित्राता यदा गच्छेत्स च क्रतुफलं लभेत् ॥ ३४ ॥

जो रण में (शस्त्र प्रहारादिक से व्याकुल होकर) भागती हुई सेनाकी रक्षा करताहै वह यज्ञ के फल को प्राप्त होताहै॥

यस्य क्षतावृतं गात्रं शरमुद्गरयष्टिभिः। देवकन्यास्तु तं वीरं हरंति रमयंति च ॥ ३५ ॥

रण में जिसका शरीर शूल, मुद्गर (मूंगरी) और यष्टि (लाठी) आदिकों

से क्षत (भग्न) हुआ हो उसवीर को देवकन्या लेजाती हैं और रमण करती हैं॥

देवांगना सहस्राणि शूरमायोधने हतम्। त्वरमाणाः प्रधावंति मम भर्ता ममेति च॥ ३६॥

संग्राम में मृत्यु को प्राप्त हुए शूरवीर को देखकर सहस्रों देवांगना 'यह मेरा पतिहो' इस प्रकार कहती हुई शीघ्रता पूर्वक दौड़कर उस के पास आती हैं ३६

यं यज्ञसंघैस्तपसा च विप्राः, स्वर्गैषिणोयत्र यथैव यांति। क्षणेन यांत्येव हि तत्र वीराः,प्राणान्सुयुद्धेन परित्यजन्ति॥ ३७॥

स्वर्ग की इच्छा करने वाले ब्राह्मण अनेकों यज्ञ और तपके द्वारा जिस प्रकार (विमानादिकों का सुख भोगते हुए) जिस स्थान (स्वर्ग) को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (आनंद युक्त)उस (स्वर्ग) स्थान को रण में प्राणत्याग करने वाले वीर क्षणमात्र में प्राप्त होजाते हैं॥३७॥

जितेन लभ्यते लक्ष्मीर्मृतेनापि वरांगनाः। क्षणध्वंसिनिकायेस्मिन्का चिंता मरणे रणे॥३८॥

रण में विजय प्राप्त होने से लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और मृत्यु प्राप्त होने से देवांगनाओं (अप्सराओं) की प्राप्ति होती है, फिर युद्ध में मृत्युको प्राप्त होनेसे इस क्षणभंगुर देहकी क्या चिंता है॥

ललाटदेशे रुधिरं श्रवच्च, यस्याहवे तु प्रविशेत वक्त्रम्। तत्सोमपानेन किलास्य तुल्यं, संग्रामयज्ञे विधिवच्च दृष्टम्॥३९॥

संग्राम में जिस वीरके मस्तक से रुधिर बहकर मुखमें प्रवेश करै उस के निमित्त वह रुधिर का पान करना संग्रामरूपी यज्ञ में विधि पूर्वक सोमपान करने की समान है इस में संशय नहीं॥३९॥

अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहंति द्विजातयः। पदे पदे यज्ञफलमानुपूर्व्याल्लभंति ते॥ ४०॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,मृत्युको प्राप्त हुए अनाथ ब्राह्मणको अपने स्कंध पर धारण करके लेजाते हैं उन को क्रमानुसार एक २ चरणपर एक २ यज्ञ का फल प्राप्त होता है अर्थात्—मृत्युको प्राप्तहुए अनाथ ब्राह्मण को जो स्मशान में लेजाते हैं उन को बहुत पुण्य प्राप्त होताहै॥

न तेषामशुभं किंचित्पापं वा शुभकर्मणाम्। जलावगाहनात्तेषां सद्यः शौचं विधीयते॥४१॥

जो मृत्युको प्राप्तहुए अनाथ ब्राह्मणको स्कन्धपर धारण करके चलते हैं उन सत्कर्म करने वाले पुरुषोंको कुछ पाप वा अशुभ नहीं होता, केवल जल में स्नानही करने से उन की शीघ्र शुद्धि हो जाती है॥ ४१॥

असगोत्रमबंधुं च प्रेतीभूतं द्विजो-

त्तमम् । वाहित्वा च दहित्वा च प्राणायामेनशुध्यति ॥ ४२ ॥

जो अपना सगोत्र वा बंधु न हो ऐसे मृत्युको प्राप्त हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणको स्कंधपर धारण करके ले चलने से तथा उसको दाह करने के आशौचसे केवल प्राणायाम ही के करने से शुद्ध होजाताहै ॥ ४२॥

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा । स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुध्यति ४३

जिस मृतकहुए पुरुषके पीछे अपनी इच्छा से जाय यदि वह पुरुष अपनी जातिका हो वा अन्य जातिका हो परन्तु उसके पीछे जाय तो जानेसे वस्त्रों सहित स्नान करके अग्निका स्पर्श करै और घृत चाखै तब शुद्ध होजाताहै ॥ ४३ ॥

क्षत्रियं मृतमज्ञानाद्ब्राह्मणोयोनुगच्छति । एकाहमशुचिर्भूत्वा पंचगव्येन शुध्यति ॥ ४४ ॥

जो अज्ञानी ब्राह्मण मृतक क्षत्रियके साथ जायतो एकदिन अशुचि रहकर तदनंतर पंचगव्यसे शुद्ध होताहै ॥ ४४॥

शवं च वैश्यमज्ञानाद् ब्राह्मणोह्यनुगच्छति । कृत्वा शौचं द्विरात्रं च प्राणायामान् षडाचरेत् ॥

अज्ञानी जो ब्राह्मण मृत्यु को प्राप्त हुये वैश्यके साथ जायतो दोदिनरात अशुचि रहकर छह प्राणायाम करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४५ ॥

प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणोज्ञानदुर्बलः । अनुगच्छेन्नीयमानं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ४६ ॥

जो ज्ञानहीन ब्राह्मण मृतक शूद्रके साथ जायतो तीनदिन पर्यंत अशुद्ध रहताहै॥

त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् । प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥

फिर तदनन्तर तीन दिनके पश्चात् समुद्र गामिनी नदीके तटपर स्थित होकर सौ प्राणायाम करके और घृत का भोजन करके शुद्ध होताहै ॥ ४७ ॥

तस्माद् द्विजोमृतं शूद्रं न स्पृशेन्न च दाहयेत् । दृष्टे सूर्यावलोकेन शुद्धिरेषा पुरातनी ४८

इतिश्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस कारण से ब्राह्मण मृतक शूद्र का स्पर्श तथा दाह क्रिया न करै । मृतक शूद्रका दर्शन करके सूर्यनारायणका दर्शन करने से शुद्धि होतीहै ॥ ४८ ॥

इतिश्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकाया तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

अतिक्रोधाद्दात्मानं वा द्वेषाद्वा यदि वा भयात् । उद्ध्नीयात्स्त्री पुमान्वा गतिरेषा विधीयते॥१॥

जो पुरुष वा स्त्री अतिक्रोध तथा

द्वेष से अथवा लोक भयादिके कारण से अपने आप को फांसी आदि देकर मारडालै तो उसकी गति इस प्रकार की होतीहै ॥ १ ॥

पूयशोणितसंपूर्णे त्वंधे तमसि मज्जति। पष्ठिवर्षसहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते॥ २ ॥

वह पीव और रुधिर से परिपूर्ण अंधकार युक्त तम नामक नरक में डूबताहै और उस नरक में साठ सहस्र वर्ष पर्यंत निवास करताहै ॥ २ ॥

नाशौचं नोदकं नाग्निं नाश्रुपातं च कारयेत्। वोढारोग्निप्रदातारः पाशच्छेदकरास्तथा ३

उसका आशौच नहीं मानना और जलक्रिया वा अग्निक्रिया वा अश्रुपात नहीं करना उसके ले जानेवाले और दाह करने वाले और पाशच्छेदन (फांसी काटना) करने वाले॥ ३ ॥

तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यंतीत्येवमाह प्रजापतिः। गोभिर्हतं तथोद्बद्धं ब्राह्मणेन तु घातितम् ॥ ४ ॥

तप्त कृच्छ्रव्रत से शुद्ध होतेहैं यह ब्रह्मा जी ने कहा है । जिस को गौवों ने मारा हो वा जो फांसी को प्राप्त हुआ हो अथवा जिस को ब्राह्मणों ने मारा हो॥

संस्पृशंति तु ये विप्रा वोढारश्चाग्निदाश्च ये। अन्ये ये चानुगंतारः पाशच्छेदकराश्च ये ॥५॥

जो ब्राह्मण उस मृतक को स्पर्श करते हैं वा श्मशान को ले जाते हैं तथा दाह करते हैं अथवा उसके पीछे जाते हैं या जो पाशच्छेदन करते हैं ॥ ५ ॥

तप्तकृच्छ्रेण शुद्धास्ते कुर्युर्ब्राह्मणभोजनम् । अनुडुत्सहितां गां च दद्युर्विप्राय दक्षिणाम्॥६॥

वे तप्त कृच्छ्र व्रत करके और सुपात्र ब्राह्मणों को भोजन करा कर तथा सुपात्र ब्राह्मण को एक बैल और गौ दक्षिणा देकरशुद्ध होतेहैं ॥ ६ ॥

त्र्यहमुष्णं पिबेद्वारि त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत्। त्र्यहमुष्णंपिबेत्सर्पिर्वायुं भक्षेद् दिनत्रयम्॥७॥

षट्पलं तु पिबेदंभस्त्रिपलं तु पयः पिबेत्। पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ ८ ॥

अब तप्त कृच्छ्र व्रत की विधि कहतेहैं ॥ तप्त कृच्छ्र व्रत करने वाला पुरुष तीन दिन पर्यंत छह२ पल उष्ण जल पीवे तदनंतर तीन दिनपर्यंत प्रति दिन चार २ पल उष्ण दुग्ध पान करै उसके पश्चात् तीन दिन पर्यंत एक२ पल उष्ण घृत पान करै फिर तीन दिन तक वायु का भोजन करै अर्थात् निर्जल व्रत करै यह तप्त कृच्छ्रका विधानहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

योवै समाचरेद्विप्रः पतितादि-

१—एक पल चार तोले का होता है।

ष्वकामतः पंचाहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥ ९ ॥

जो ब्राह्मण विना इच्छा पतितादिकों से ५ दिन १० दिन वा १२ दिन ॥ ९ ॥

मासार्द्धमासमेकं वा मासद्वय-मथापिवा । अब्दार्द्धमब्दमेकं वा भवेदूर्ध्वं हि तत्समः ॥ १० ॥

अथवा १५ दिन तथा एक वा दो माम तथा छः मास एक वर्ष अथवा एक वर्ष से अधिक समय पर्यन्त संसर्ग करै तो एक वर्ष से अधिक संसर्ग करने से वह ब्राह्मण उसी के तुल्य पतित होजाता है ॥ १० ॥

त्रिरात्रं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्र-माचरेत् । तृतीये चैव पक्षे तु कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ ११ ॥

यदि पांच दिन पतितादिकों से संसर्ग होतो उसकी शुद्धि के निमित्त तीन दिन पर्यंत उपवास करै और जो दश दिन संसर्ग रहे तो कृच्छ्रव्रत करै बारहदिन संसर्ग रहे तो तप्त कृच्छ्र करै ॥ ११ ॥

चतुर्थे दशरात्रं स्यात्पराकः पंच-मे मतः । कुर्याच्चांद्रायणं षष्ठे सप्तमे त्वैंदवद्वयम् ॥ १२ ॥

प द्रहदिन संसर्ग रहने में दश दिन पर्यंत उपवास करै और एक मास पर्यंत संसर्ग रहै तो पराक व्रत करै दो मास संसर्ग होनेपर चांद्रायण व्रत करे और छः मास संसर्ग होनेपर दो चांद्रायणकरै ॥

शुद्ध्यर्थमष्टमे चैव षण्मासा-त्कृच्छ्रमाचरेत् । पक्षसंख्याप्रमाणे-न सुवर्णान्यपि दक्षिणा ॥ १३ ॥

यदि एक वर्ष पर्यंत संसर्ग रहै तो छः मास तक कृच्छ्र व्रत करै और जितने पक्षसंसर्ग रहाहो उतने ही सुवर्ण की दक्षिणा दे तब शुद्ध होता है, पूर्वोक्त प्रकार से पहिलापक्ष ५ दिन का ऐसे ही १० । १२ । १५ । दिन १ मास । २ । मास । ६ । मास । और १ वर्ष के क्रमसे ८ पक्षजानो ॥ १३ ॥

ऋतुस्नाता तु या नारी भर्ता-रंनोपसर्पति । सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥ १४ ॥

जो ऋतु के पश्चात् स्नान करके स्त्री भर्ता के समीप नहीं जाती वह मृत्यु के अनंतर नरक को प्राप्त होती है और नरक भोगने के पश्चात् वारंवार विधवा होती है ॥ १४ ॥

ऋतुस्नातां तु योभार्यां सन्निधौ नोपगच्छति । घोरायां भ्रूणहत्या-यां युज्यते नात्र संशयः ॥ १५ ॥

और जो पुरुष अपनी ऋतुस्नाता स्त्री के समीप नहीं जाता वह बडीघोर गर्भहिंसा के पाप से युक्त होता है इस में संशय नहीं है ॥ १५ ॥

दरिद्रं व्याधितं धूर्तं भर्तारं यात्र-

मन्यते । सा शुनी जायते मृत्वा शूकरी च पुनः पुनः ॥ १६ ॥

जो स्त्री अपने दरिद्री, रोगी, वा धूर्त भी पति का अनादर करती है वह मृत्यु के पश्चात् वारंवार कूकरी वा शूकरी की योनि को प्राप्त होतीहै ॥ १६ ॥

पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् । आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १७ ॥

पति के जीवित रहते जो स्त्री निराहार व्रत करती है वह पति की आयु को न्यून करती है और मृत्यु को प्राप्त होकर नरक को प्राप्त होती है ॥ १७ ॥

अपृष्ट्वा चैव भर्तारं या नारी कुरुते व्रतम् । सर्वं तद्राक्षसान्गच्छेदित्येवं मनुरब्रवीत् ॥ १८ ॥

जो स्त्री पति की विना आज्ञा लिये व्रत करती है उसका फल राक्षस लेजाते हैं अर्थात् वह व्रत निष्फल होता है ऐसा मनुजी ने कहा है ॥ १८ ॥

बांधवानां सजातीनां दुर्वृत्तं कुरुते तु या । गर्भपातं च या कुर्यान्न तां संभाषयेत्क्वचित् ।१६।

जो स्त्री अपने बांधवों से अथवा अपने जाति वालों से दुराचरण करती है तथा जो स्त्री गर्भपात करती है उस स्त्री से कभी सम्भाषण न करै ॥ १९ ॥

यत्पापं ब्रह्महत्यायां द्विगुणं गर्भपातने । प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागोविधीयते ॥ २० ॥

जितना पाप ब्रह्महिंसा में होता है उससे द्विगुणा पाप गर्भपात करने में होता है उसका प्रायश्चित्त नहीं है अतएव उस स्त्री का त्यागही करना योग्य है२०

ओघवाताहृतं वीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति । सक्षेत्री लभतेवीजं न वीजी भागमर्हति ॥ २१ ॥

जल और वायु के वेग से किसी मनुष्य का बीज किसी दूसरे मनुष्य के खेत में आकर उत्पन्न होजावै तो उस बीज के फलका भागी खेतवाला ही होताहै बीजवाले को भाग नहींमिलता ॥

तद्वत्परस्त्रियः पुत्रौ द्वौ सुतौ कुंडगोलकौ । पत्यौ जीवति कुंडस्तु मृते भर्तरि गोलकः ॥ २२ ॥

इसीप्रकार कुंड और गोलक ये दो पुत्र जो परस्त्री से उत्पन्न होते हैं उस स्त्री के ही पुत्र हैं, वीर्यदान करनेवाले के नहीं । पतिके जीवित रहते .जारजात पुत्र को कुण्ड कहते हैं और पति की मृत्यु होनेके पश्चात् जारजात पुत्रको गोलक कहते हैं ॥ २२ ॥

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमैकः सुतः । दद्यान्माता पिता वापि स पुत्रोद्दत्तकोभवेत् ॥२३॥

औरस, क्षेत्रज तथा दत्तक और

कृत्रिम यहभी पुत्र हैं, माता वा पिताने जो पुत्र किसी पुरुषको दियाहो वह दत्तक पुत्र कहलाता है॥ २३॥

परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते। सर्वेते नरकं यांति दातायाजकपंचमाः॥ २४॥

परिवित्ति और परिवेत्ता तथा जो कन्या परिवेत्ता से विवाहीजाय, कन्यादान करनेवाला और याजक (विवाह कराने वाला) ये संपूर्ण पुरुष नरक में जाते हैं। बड़े भ्राता के विवाह होने से पूर्व छोटे भ्राता का विवाह हो तो बड़े भ्राता को परिवित्ति और छोटे भ्राता को परिवेत्ता कहते हैं॥ २४॥

द्वौ कृच्छ्रौ परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्रएव च। कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ दातुस्तु होता चांद्रायणं चरेत्॥

जो बड़े भ्राता के विवाह होने से पहिले छोटे भ्राता का विबाह हुआ हो तो उसके दोषकी निवृत्तिके निमित्त वे दोनों भ्राता दो २ कृच्छ्रव्रत करैं और वह विवाहित कन्या एक कृच्छ्र व्रत करै और कन्यादान करनेवाला कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रत करै और होता चांद्रायण व्रत करै॥ २५॥

कुब्जवामनषंडेषु गद्गदेषु जडेषु च। जात्यंधे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने॥ २६॥

जो बड़ा भ्राता कुबड़ा, बौना, नपुंसक अथवा स्पष्ट न बोलनेवाला मूर्ख तथा जन्मांध और बहिरा वा गूंगा हो तो परिवेदन का दोष नहीं है॥ २६॥

पितृव्यपुत्रः सापत्नः परनारीसुतस्तथा। दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने॥ २७॥

यदि चचा वा ताऊ का पुत्र, सपत्नी का पुत्र अथवा अन्य स्त्री से उत्पन्न हुआ पुत्र बड़ा भ्राता हो तौ सन्तानोत्पत्ति वा अग्निहोत्र के लिये विवाह करलेने में कुछ दोष नहीं॥ २७॥

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ॥ पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्योविधीयते॥२८॥

जिस कन्या का वाग्दान होगया हो और विवाह न हुआ हो, ऐसी दशा में उसका पति यदि नष्ट होगया हो (अर्थात्–कहीं चलागया हो और पता न लगै) वा मृतक होगया हो, या सन्यासी हो जाय अथवा नपुंसक हो तौ इन पांच आपत्तियों में उस कन्या का दूसरे पति के साथ विवाह करदेना चाहिये॥ २८॥

मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता। सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः॥२९॥

पतिके मृत्युको प्राप्त होनेके अनंतर

जो स्त्री ब्रह्मचर्य नियममें स्थित रहती है वह मृत्युहोने के पश्चात् इसप्रकार स्वर्ग को प्राप्त होती है जैसे ब्रह्मचारी स्वर्ग को प्राप्त होतेहैं ॥ ॥ २९ ॥

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि लोमानि मानवे। तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं यानुगच्छति ॥३०॥

पतिकी मृत्यु होनेके अनंतर जो स्त्री सती होकर पतिके साथ जातीहै वह स्त्री जितने मनुष्य के शरीरमें रोम होतेहैं उतने वर्ष पर्यंत स्वर्ग वास करतीहै, अर्थात् सती स्त्री साढेतीन करोड वर्ष पर्यंत स्वर्गमें निवास करतीहै ॥ ३० ॥

व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते विलात्। एवं स्त्री पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते॥३१॥

इतिश्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

जिस प्रकार सर्पको पकड़ने वाला (सपेरा) सर्पको बलकरके विल (भट्ट) मेंसे निकाल लेताहै इसी प्रकार वह स्त्री अपने पतिका पापोंसे उद्धार करके उसके साथ आनंद करतीहै ॥ ३१ ॥

इतिश्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

वृकश्वानशृगालादि दष्टोयस्तु द्विजोत्तमः। स्नात्वा जपेत्सगायत्रीं पवित्रां वेदमातरम्॥१॥

जिस ब्राह्मणको भेड़िये, कुत्ते, तथा गीदड आदिने काटाहो वह स्नानकरके गायत्री का जपकरै, क्योंकि–गायत्री परम पवित्र और वेदोंकी माता है ॥१॥

गवां शृंगोदकस्नानान्महानद्योस्तु संगमे। समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः शुचिर्भवेत् ॥ २ ॥

जिसको श्वान आदिकोंने काटा हो वह गोशृंगसे शुद्ध कियेहुए जलमें स्नान करनेसे तथा पवित्र नदियों के संगममें (जहां दोपवित्र नदी मिली हों) स्नान करने से अथवा समुद्रका दर्शन करने से भी शुद्ध होजाता है ॥ २ ॥

वेदविद्या व्रतस्नातः शुना दष्टोद्विजोयदि। सहिरण्योदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥

यदि वेदाध्ययन रूप व्रत करके युक्त ब्राह्मण को कुत्ते ने काटा हो तो वह सुवर्ण से शुद्ध किये हुए जल से स्नान करके और घृत भोजन करके शुद्ध होता है ॥ ३ ॥

सव्रतस्तु शुना दष्टोयस्त्रिरात्रमुपावसेत्। घृतं कुशोदकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मण तीन दिन का व्रत कर रहाहो और उसको कुत्ता काटै तो वह घृत और कुशोदक का पान करै तब शुद्ध होता है ॥ ४ ॥

अव्रतः सव्रतोवापि शुनादष्टो-

भवेद्द्विजः। प्रणिपत्य भवेत्पूतो विप्रैश्चक्षुर्निरीक्षितः॥ ५॥

जिस ब्राह्मण को कुत्तेने काटाहो वह व्रतीहो अथवा अव्रती परंतु ब्राह्मणों को प्रणामकरके उनकी दृष्टिमात्र से शुद्ध होजाता है॥ ५॥

शुनाघ्रातावलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च। अद्भिः प्रक्षालनं प्रोक्तमग्निना चोपचूलनम्॥६॥

जिसको श्वान ने चाटा हो वा सूंघा हो उसे जलसे प्रक्षालन करै और अग्नि से तप्त करै तौ शुद्धि होती है॥ ६॥

ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जंबुकेन वृकेण वा। उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुची भवेत्॥ ७॥

जो ब्राह्मणी को श्वान, शृगाल, तथा वृकादि ने काटाहो तो वह उदय होते हुए सूर्यचंद्रादि ग्रहों और नक्षत्रों का दर्शन करनेसे ही शुद्ध होजाती है॥७॥

कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन। यां दिशं व्रजते सोमस्तां दिशं चावलोकयेत्॥ ८॥

जो कदाचित् कृष्णपक्षमें चंद्रमाका दर्शन न हो तो जिस दिशा में उस दिन चंद्रमा उदय हों उसदिशा का दर्शन करै॥

असद्ब्राह्मणके ग्रामे शुना दष्टो द्विजोत्तमः वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत्॥ ९॥

जिस ग्राम में श्रेष्ठ ब्राह्मण न हों और किसी ब्राह्मण को कुत्ता काटै तो वह स्नान पूर्वक वृषभ की प्रदक्षिणा करके शीघ्र शुद्ध होजाता है॥ ९॥

चांडालेन श्वपाकेन गोभिर्विप्रैर्हतोयदि। आहिताग्निर्मृतोविप्रो विषेणात्मा हतोयदि॥ १०॥

जो अग्निहोत्री ब्राह्मण चांडाल वा श्वपचके हाथ से मारागया हो अथवा उसे गौ वा ब्राह्मणों ने मारा हो तथा उसने स्वयं विष खाकर आत्मघात किया हो॥ १०॥

दहेत्तं ब्राह्मणं विप्रो लोकाग्नौ मंत्रवर्जितम्। स्पृष्ट्वा चोह्य च दग्ध्वा च सपिंडेषु च सर्वदा॥११॥

तो उसके सपिंडों में से जो पुरुष उसकी क्रिया करै वह उस ब्राह्मण को बिना मंत्र के लौकिक अग्नि में दाह करै और उसे स्पर्श करके तथा उसके विमान को उठाके और दाह करके॥ ११॥

प्राजापत्यं चरेत्पश्चाद्विप्राणामनुशासनात्। दग्ध्वास्थीनि पुनर्नीत्वा क्षीरैः प्रक्षालयेद् द्विजः॥१२॥

ब्राह्मणों की आज्ञा से प्राजापत्यव्रत करै और दाह करने के अनन्तर उसकी अस्थियों को दूध में धोवै॥ १२॥

स्वेनाग्निना स्वमंत्रेण पृथगेतत्पुनर्दहेत्। आहिताग्निर्द्विजःकश्चित्प्रवसन् कालचोदितः॥ १३॥

फिर उन अस्थियों को मंत्रपूर्वक अपनी (गार्हपत्य) अग्नि में पृथक् दाह करै, हे मुनीश्वरो! जो अग्निहोत्री ब्राह्मण प्रदेश में कालवश से ॥ १३ ॥

देहनाशमनुप्राप्तस्तस्याग्निर्वसते गृहे। प्रेताग्निहोत्रसंस्कारः श्रूयतां मुनिपुंगवाः ॥१४॥

मृत्यु को प्राप्त हुआ हो और उसकी अग्निहोत्र करनेकी अग्नि उसके घरपर स्थित हो तो उसका अग्नि संस्कार जिस प्रकार होना चाहिये सो श्रवण करो १४

कृष्णाजिनं समास्तीर्य कुशैस्तु पुरुषाकृतिम्। पट्शतानि शतं चैव पलाशानां च वृंततः ॥ १५ ॥

चिता की भूमिपर कृष्णमृगचर्म को बिछायकर उसके ऊपर कुशाओं का पुरुषाकार बनावै और उस कुशा पुरुष पर सातसौ ढाककी डालियें इसप्रकार स्थापन करै ॥ १५ ॥

चत्वारिंशच्छिरे दद्याच्छतं कंठे तु विन्यसेत्। बाहुभ्यां दशकं दद्यादंगुलीषु दशैव तु ॥ १६ ॥

चालीस तो शिरपर स्थापन करै और सौ कंठ में, दश भुजाओं पर धारण करै और दश अंगुलियोंपर रक्खै॥

शतं तु जघने दद्याद्द्विशतंतूदरेतथा। दद्यादष्टौ वृषणयोः पंच मेढ्रे तु विन्यसेत् ॥ १७ ॥

और सौ नाभि पर तथा दोसौ उदर पर स्थापन करै और आठ डालियें दोनों वृषणों (अण्डकोश) पर और पांच लिंग पर रक्खै ॥ १७ ॥

एकविंशतिमूरुभ्यां द्विशतं जानुजंघयोः। पादांगुष्ठेषु षड्दद्याद्यज्ञपात्रं ततोन्यसेत् ॥ १८ ॥

इक्कीस ऊरु नितंबों (के नीचे) और दोसौ जानु और जंघाओं पर और छह चरण के अंगूठों पर धारण करै, तदनन्तर अग्निहोत्र के पात्रों को स्थापन करै ॥

शय्यां शिश्ने विनिक्षिप्य अरणिं मुष्कयोरपि। जुहूं च दक्षिणे हस्ते वामे तूपभृतं न्यसेत्१६।

शिश्न में शय्या को और अण्डकोश में अरणिको स्थापन करै, दक्षिण हस्त में जुहू (स्रुवा) और वाम हस्त में उपभृत को स्थापन करै ॥ १९ ॥

पृष्ठे तूलूखलं दद्यात्पृष्ठे च मुशलं न्यसेत्। उरसि क्षिप्य दृषदं तंडुलाज्यतिलान्मुखे ॥ २० ॥

पृष्ठतल में उलूखल और मूसल रक्खै और हृदय में दृषद् (सिल) स्थापन करै तथा मुखमें चावल घृत और तिल ॥

श्रोत्रे तु प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीं च चक्षुषोः। कर्णे नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलं न्यसेत् २१

और कर्ण में प्रोक्षणी और आंखों

में आज्यस्थाली स्थापन करै और कर्ण, नेत्र, तथा मुख और नासिका में सुवर्ण का खण्ड रक्खै ॥ २१ ॥

अग्निहोत्रोपकरणमशेषं तत्र विन्यसेत्। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्येकाहुतिं सकृत्। २२ ॥

दद्यात्पुत्रोथवा भ्रातााप्यन्योत्रापि च बान्धवः। यथा दहन संस्कारस्तथा कार्यं विचक्षणैः २३

इसप्रकार अग्निहोत्र की सम्पूर्ण वस्तु वहां पर स्थापन करके उस मृतक अग्निहोत्री का पुत्र वा भ्राता तथा जो कोई उसका बांधव हो वह ' असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ' इस मंत्र से एक आहुति दे, तदनन्तर दाह संस्कार की विधि के अनुसार उसकी दाह क्रिया करै ॥ २३ ॥

ईदृशं तु विधिं कुर्याद् ब्रह्मलोकगतिस्मृता। दहंति ये द्विजास्तं तु ये यांति परमां गतिम् ॥ २४ ॥

इसप्रकार विधि करने से उस मृतक को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है और जो ब्राह्मण उसको दाह करते हैं वे भी परम गति को प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

अन्यथा कुर्वते कर्म स्वात्मबुद्ध्या प्रचोदिताः। भवंत्यल्पायुषस्ते वै पतंति नरकेऽशुचौ ॥ २५ ॥

इतिश्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जो अपनी बुद्धिके अनुसार अन्यथा कर्म करते हैं, वे स्वल्पायु होते हैं और अशुचिनामक नरक को प्राप्त होते हैं ॥

इतिश्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्याय. ॥ ५ ॥

अतःपरं प्रवक्ष्यामि प्राणिहत्यासु निष्कृतिम्। पराशरेण पूर्वोक्तां मन्वर्थेपि च विस्तृताम् ॥ १ ॥

इस के अनंतर प्राणिमात्र की हिंसा का प्रायश्चित्त कहते हैं, जो कि-पराशर जीने पूर्व वर्णन किये हैं और मनुजी ने भी विस्तार पूर्वक कहे हैं ॥ १ ॥

क्रौंचसारसहंसांश्च चक्रवाकं च कुक्कुटम्। जालपादं च शलभं हत्वाहोरात्रतः शुचिः॥

कुंज, सारस, हंस, चकुवा, कुक्कुट और जालपाद अर्थात् जिन पक्षियों के चरण जुडेहुए हों तथा टिड्डी इन में से किसी को मारकर एक दिनरात के उपवास से शुद्ध होता है ॥२॥

बलाकाटिट्टिभौ वापि शुकपारावतावपि। पाठीनबकघाती च शुध्यते नक्तभोजनात् ॥ ३ ॥

बालकी (बगली) टटीरी, तोता तथा पारावत मछली और बगला इनमें से किसी भी जीवकी हिंसा करने वाला नक्त भोजन व्रत (दिन में भोजन न करना, रात्रि में एकवार भोजन करना) से शुद्ध होता है ॥ ३ ॥

वृककाककपोतानां सारी तित्तिर घातकः । जलमध्यउभे संध्ये प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

भेडिया, काक, कबूतर, मैना, तीतर, इनमें से किसी जीव की हिंसाकी हो तो दोनों संध्याओं के समय जल में स्थितहोकर प्राणायाम करनेसेशुद्धहोताहै

गृध्रश्येन शशादीनामुलूकस्य च घातकः। अपक्वाशीर्दिनं तिष्ठेद्रात्रौ मारुतभोजनः ॥ ५ ॥

जिसने गिद्ध, बाज, खरगोश तथा उलूक (उल्लू) की हिंसा की हो वह दिनभर पकान्न भोजन न करै और रात्रि में वायु भक्षण करके स्थित रहै अर्थात्- कुछ भोजन न करै ॥ ५ ॥

चटकाया मयूरस्य कोकिला खंजरीटके च लाविका रक्तपक्षेपु-शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ६ ॥

चटका, मयूर, कोकिला, ममोला तथा लाविका (बटेर) और लाल पंख वाले पक्षियों में से किसी एक की हिंसा हुई हो तो नक्त भोजन व्रत मे शुद्ध होता है॥

कारंडवचकोराणां पिंगलाकुररस्य चाभारद्वाजादिकं हत्वाशिवं संपूज्य शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

मुर्गावी, चकोर, चामचिड (चिमगादर) टटीरी तथा पपीहा इन में से किसी का बध हुवा हो तो शिवजी का पूजन करने से शुद्ध होता है ॥ ७ ॥

भेरुंडचापभासांश्च पारावतकपिंजलौ । पक्षिणां चैव सर्वेषामहोरात्रमभोजनम् ॥ ८ ॥

भेरुंड, नीलकंठ, भास और पारावत कपिंजल तथा सम्पूर्ण पक्षियों मे से जिसने किसी एक की हिंसा की हो वह एक दिन रात निराहार व्रत करने से शुद्ध होता है ॥ ८ ॥

हत्वा मूषकमार्जारसर्पाजागरडुंडुभान् । कृसरं भोजयेद्विप्राँल्लोहदंडं च दक्षिणा ॥ ९ ॥

चूहा, बिल्ली, सर्प, अजगर तथा जलसर्प इनमें से किसी की हिंसा हुई हो तो सुपात्र ब्राह्मणों को खिचडी का भोजन कराने और लोह दंड की दक्षिणा देने मे शुद्ध होता है ॥ ९ ॥

शिशुमारं तथा गोधां हत्वा कूर्मं च शल्लकम् । वृंताकफलभक्षी वाप्यहोरात्रेण शुद्ध्यति १०

शिशुमार, गोह तथा कच्छप और शिल्लू सांप इनमें से किसी एक को मारकर वा बैंगन के फल को खाने वाला अहोरात्रव्रत करनेसे शुद्ध होता है ॥

वृकजम्बुकऋक्षाणां तरक्षूणां च घातकः । तिलप्रस्थं द्विजे दद्याद्वायुभक्षोदिनत्रयम् ॥ ११ ॥

भेडिया, गीदड, ऋच्छ तथा व्याघ्र को मारकर,सुपात्र ब्राह्मण को एक प्रस्थ[1]

[1] प्रस्थ ६४ तोले का होता है ।

निरुद्द और तीनदिन पर्यंत निर्जलव्रत करे तो शुद्ध होता है ॥ ११ ॥

गजस्य च तुरंगस्य महिषोष्ट्रस्य घातने । प्रायश्चित्तमहोरात्रं त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ १२ ॥

हाथी, घोड़ा, भैंसा तथा ऊंट की हिंसा होगई होय तो अहोरात्रव्रत करै और तीनों संध्याओं के समय स्नान करै॥

कुरंगं वानरं सिंहं चित्रंव्याघ्रं च घातनम् । शुध्यते सत्रिरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥ १३ ॥

मृग, वानर तथा सिंह, चीता वा व्याघ्रकी हिंसा करके तीनदिन पर्यंत उपवास करै और सुपात्र ब्राह्मणों को भोजन जिमावै ॥ १३ ॥

मृगरोहिद्वराहाणां भवेर्वस्तस्य घातकः अफालकृष्टमश्नीयादहोरात्रमुपोष्य सः ॥ १४ ॥

एवं चतुष्पदानां च सर्वेषा बनचारिणाम् । अहोरात्रोपितास्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १५ ॥

जिसने मृगरोहित (मृगी या रोहू मछली) सूकर तथा भेड़ और बकरे की हिंसा की हो वह अहोरात्र उपवास करै और विना हलसे जोतेहुये अन्न (नीवारादि) को भक्षण करके शुद्ध होता है इसीप्रकार संपूर्ण चतुष्पद और बनचर जन्तुओं में से किसी एक जन्तु की हिंसा करनेवाला गायत्री का जप करताहुआ अहोरात्रव्रत करै ॥ १४ । १५ ॥

शिल्पिनं कारुकं शूद्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत् । प्राजापत्यद्वयं कृत्वा वृषैकादश दक्षिणा १६

शिल्पी, कारुक (कारीगर) शूद्र तथा स्त्री को मारनेवाला पुरुष दो प्राजापत्यव्रत करके ग्यारहवृषभों का दान करने से शुद्ध होताहै ॥ १६ ॥

वैश्यं वा क्षत्रियं वापि निर्दोषं योभिघातयेत् । सोतिकृच्छ्रद्वयं कुर्याद्गोविंशद्दाक्षिणां ददेत् १७

निरपराधी वैश्य वा क्षत्रिय की हिंसा करके दो अतिकृच्छ्र व्रत करै और बीस गौ दक्षिणादे ॥ १७ ॥

वैश्यं शूद्रं क्रियासक्तं विकर्मस्थं द्विजोत्तमम् । हत्वा चांद्रायणं तस्य त्रिंशद्गाश्चैव दक्षिणा॥ १८॥

अपने धर्म की क्रिया में आसक्त वैश्य वा शूद्रको तथा कुकर्मी ब्राह्मण को मारकर चांद्रायणव्रत करके तीस गोदान करने से शुद्ध होता है ॥ १८ ॥

चांडालंहतवान्कश्चिद् ब्राह्मणोयदि कंचन । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं गोद्वयं दक्षिणां ददेत् ॥१९॥

जो किसी ब्राह्मण से चांडाल की हिंसा हुई हो तो वह कृच्छ्र और प्राजापत्य व्रत करके दो गौ दक्षिणा दे॥१९॥

क्षत्रियेणापि वैश्येन शूद्रेणैवेतरेण च । चांडालस्य बधे प्राप्ते कृच्छ्रार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २० ॥

जो क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र अथवा किसी अन्य जाति ने चांडाल की हिंसा की हो तो वह अर्द्धकृच्छ्र व्रत करके शुद्ध होता है ॥ २० ॥

चोरः श्वपाकश्चांडालोविप्रेणाभिहतोयदि । अहोरात्रोपितः स्नात्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति २१

जो किसी ब्राह्मण ने चोरी करनेवाले श्वपच वा चांडाल की हिंसा की हो तो वह स्नान पूर्वक अहोरात्रव्रत करके पंचगव्य पान करने से शुद्ध होता है २१

श्वपाकं चापि चांडालं विप्रः संभाषते यदि । द्विजसंभाषणं कुर्यात्सावित्रीं च सकृज्जपेत् २२

यदि कोई ब्राह्मण श्वपच वा चांडाल से संभाषण करे तो वह ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण से संभाषण करके एकवार गायत्री मंत्र का जप करे ॥ २२ ॥

चांडालैः सह सुप्तं च त्रिरात्रमुपवासयेत् । चांडालैकपथं गत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः ॥ २३ ॥

जो चांडालों के साथ एक स्थान वा एक वृक्षकी छाया में सोया हो तो तीन दिन रात पर्यंत उपवास करै और एक मार्ग में चांडाल के साथ चल स्नान करै और (जितने चरण चला हो उतने) गायत्री मंत्रोंका स्मरण करने से शुद्ध होता है ॥ २३ ॥

चांडाल दर्शने सद्य आदित्यमवलोकयेत् । चांडालस्पर्शने चैव सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥

चांडाल का दर्शन करके शीघ्र सूर्य का दर्शन करै और चांडाल का स्पर्श करके वस्त्रों सहित स्नान करै तब शुद्ध होता है ॥ २४ ॥

चांडालखातवापीषु पीत्वा च सलिलं द्विजः । अज्ञानाच्चैकनक्तेन त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ २५ ॥

यदि ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य विनाजाने चांडाल की बनाई हुई बावडी में जलपान करले तौ एकवार रात्रि में भोजन करके (दिनमें भोजन न करके) एक दिन रात में शुद्ध होता है ॥२५ ॥

चांडालभांडं संस्पृष्ट्वा पीत्वा कूपगतं जलम् । गोमूत्र यावकाहारस्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् २६

चांडालघटसंस्थं तु तत्तोयं पिवते द्विजः । तत्क्षणात्क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २७ ॥

जिस कुवे में चांडाल के पात्र से छुआ हुआ जल गिरा हो उस कुए के जलको पीकर तीन दिन पर्यंत गोमूत्र पान और यव का भोजन करने से शुद्ध होता

है (इस से प्रकट हुआ कि-जिस कुए में यवनों का पात्र जो चांडालके समान है पडता हो उस कुए का जल भी अपेय है) जो ब्राह्मण चांडालके घडे का जल पीकर तत्काल उगल दे वा वमन करके निकालदे तौ वह प्राजापत्यव्रत से शुद्ध होता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

यदि न क्षिपते तोयं शरीरेयस्य जीर्यति। प्राजापत्यं न कर्तव्यं कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ २८ ॥

यदि उस जलको न उगले और वह जल शरीर में पचजाय तौ प्राजापत्य से शुद्ध नहीं होता, कृच्छ्र सांतपन करने से शुद्ध होता है ॥ २८ ॥

चरेत् सांतपनं विप्रः प्राजापत्यमनंतरः। तदर्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २९ ॥

ब्राह्मणको उसकी शुद्धि के निमित्त कृच्छ्र सांतपन करना चाहिये और क्षत्रियको प्राजापत्यव्रत करना चाहिये वैश्यको उसकी शुद्धिके निमित्त अर्धप्राजापत्य करना उचित है और शूद्र चौथाई प्राजापत्य करनेमेही शुद्ध होजाताहै

भांडस्थमंत्यजानां तु जलं दधि पयः पिबेत्। ब्राह्मणःक्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव प्रमादतः॥ ३०॥ ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनां तु निष्कृतिः। शूद्रस्यचोपवासेन तथा दानेन शक्तितः । ३१ ॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य अन्त्यजों (रजकादिकों) के पात्र का जल, दही तथा दुग्ध बिनाजाने पान करले तौ ब्रह्मकूर्च उपवास करने से शुद्ध होता है और शूद्र एक दिन उपवास करने से तथा यथाशक्ति सुपात्र ब्राह्मणोंको दान देनेसे शुद्ध होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

भुंक्ते ज्ञानाद्द्विजश्रेष्ठश्चांडालान्नं कथं च न। गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेण शुद्धयति ३२॥

जो ब्राह्मण अज्ञान से चांडालका अन्न भोजन करले तौ दशदिन पर्यंत गोमूत्र और यवका भोजन करनेसे शुद्ध होताहै॥

एकैकं ग्रासमश्नीयाद्गोमूत्रे यावकस्य च। दशाहं नियमस्थस्य व्रतं तत्तु विनिर्दिशेत्॥३३॥

प्रतिदिन दशदिन पर्यंत गोमूत्र और यवका एक २ ग्रास भक्षण करके नियम में स्थित रहकर व्रत को समाप्त करै तो दशदिन में शुद्ध होता है ॥ ३३ ॥

अविज्ञातस्तु चांडालोयत्र वेश्मनि तिष्ठति। विज्ञातउपसंन्यस्य द्विजाः कुर्युरनुग्रहम्। ३४ ॥

जो बिना जाने हुए किसीके घर पर चाण्डाल स्थित हो और वह घरवाला उसके जानने के अनन्तर उसे निकालदे तौ जिस के घरपर चाण्डाल रहा था उस

पर ब्राह्मण कृपा करें ॥ ३४ ॥

मुनिवक्त्रोद्गतान्धर्मान् गायंतो-वेदपारगाः । पतंतमुद्धरेयुस्तं धर्मज्ञाः पापसंकटात् ॥ ३५ ॥

अर्थात् मुनियों के मुख से कहे हुए धर्मों को गायकर वेदपारगत धर्मज्ञ ब्राह्मण पतित होते हुए उस पुरुष को पापके दुःख से उद्धार करें ॥ ३५ ॥

दध्ना च सर्पिषा चैव क्षीरगो-मूत्रयावकम् । भुंजीत सह भृत्यैश्च त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ ३६ ॥

अब उस पतित का प्रायश्चित्त कहते हैं, अपने कुटुम्ब और भृत्यादि सहित दधि-घृत और दुग्ध के साथ यवान्न भोजन करै और गोमूत्र पान करै, तथा त्रि-काल में स्नान करै तो शुद्ध होता है ॥

त्र्यहं भुंजीत दध्ना च त्र्यहं भुं-जीत सर्पिषा त्र्यहं क्षीरेण भुंजीत एकैकेन दिनत्रयम् ॥ ३७ ॥

तीनदिन दही से खाय और तीन दिन घृत के साथ भोजन करै और तीन दिन दुग्ध से भोजन करै, एक२ से तीन१ दिन भोजन करै ॥ ३७ ॥

दधि क्षीरस्य त्रिपलं पलमेकं घृतस्य तु । दुष्टस्यान्नं न भुंजीत नोच्छिष्टं कृमिदूषितम् ॥ ३८ ॥

जिसपुरुषका अंतःकरण दुष्टहो उस का अ न तथा उच्छिष्ट अन्न और जो कृमि आदिकोंने दूषित किया हो ऐसे अन्न का भोजन न करे । दही दूध तीन२ पल और घृत एकपल इसप्रकार भो-जन करै ॥ ३८ ॥

भस्मना तु भवेच्छुद्धिरुभयोः कांस्यताम्रयोः । जलशौचेन व-स्त्राणां परित्यागेन मृण्मयम् ॥ ३९

अब जिस स्थान में चांडाल स्थित रहा हो उस स्थान में स्थित द्रव्यों की तथा उस स्थान की शुद्धि कहते हैं, कांसी और तांबे की शुद्धि भस्म मे होती है और वस्त्रों की शुद्धि जल से होती है तथा मृत्तिका के पात्रों का त्यागदेना उचित है ॥ ३९ ॥

कुसुंभगुडकार्पासं लवणं तैल सर्पिषी । द्वारे कृत्वा तु धान्या-नि दद्याद्वेश्मनि पावकम् ॥ ४० ॥

कुसुम्भ, गुड, कपास और लवण, तैल, घृत तथा धान्यादिकों को घरके द्वार से बाहर निकालकर घरमें अग्नि देदे, अर्थात्--घरकी संपूर्ण भूमि को अग्नि से तप्त करै ॥ ४० ॥

एवं शुद्धस्ततः पश्चात्कुर्याद्ब्रा-ह्मणतर्पणम् । त्रिशतं गावृषं चैकं दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥ ४१ ॥

तदनन्तर घर को गोमयादि से शुद्ध करके और आप पूर्वोक्त व्रतसे शुद्धहो-कर उसघरमें सुपात्र ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें तीनसौ और एक वृष द-क्षिणा में दे ॥ ४१ ॥

पुनर्लेपनखातेन होमजाप्येन शुद्ध्यति। आधारेण च विप्राणां भूमि दोषो न विद्यते॥ ४२॥

लीपने, खोदने तथा होम, जप इत्यादिक करने से भी भूमि शुद्ध होती है और ब्राह्मणों के आधार (आसनादिक) से भूमि दोष नहीं होता अर्थात् यदि लिपी हुई भूमि के ऊपर ब्राह्मण बैठजाय तौ अशुद्ध नहीं होती, अन्य जाति की स्थिति से भूमि अपवित्र होती है इसकारण उसे फिर शुद्धकरना चाहिये॥

चांडालैः सह संपर्कं मासं मासार्द्धमेव वा। गोमूत्रयावकाहारोमासार्द्धेन विशुद्ध्यति॥

जो १ मास वा १ पक्ष पर्यंत चांडालों के साथ संसर्ग रहै तो अर्द्धमास पर्यंत गोमूत्रपान और यवाहार करने से शुद्ध होता है॥ ४३॥

रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीविनी। चातुर्वर्णस्य तु ग्रहे ह्यविज्ञाता तु तिष्ठति॥ ४४॥

यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के घरमें धोबन, चमारी तथा लुब्धकी (व्याधकी स्त्री) अथवा बांसका कार्य करनेवाली बिन जाने रहै॥४४॥

ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात्पूर्वोक्तस्यार्द्धमेव तु। गृहदाहं न-कुर्वीत शेषं सर्वं च कारयेत् ४५

तौ जानने के पश्चात् जो प्रायश्चित्त पहिले चांडाल के अज्ञात स्थित रहने में कहा है उससे आधा प्रायश्चित्त करै केवल गृहदान न करै और संपूर्ण प्रायश्चित्त करै॥ ४५॥

गृहस्याभ्यंतरं गच्छेच्चांडालोयदि कस्य चित्। तमागाराद्विनिःसार्य मृद्भांडं तु विसर्जयेत्॥४६॥

यदि किसी के घरके भीतर कोई चांडाल चला जावै तौ उसे घरसे बाहर निकालकर मिट्टी के पात्रों को त्यागदे ४६

रसपूर्णं तु मृद्भांडं न त्यजेत्तु कदाचन। गोमयेन तु संमिश्रैर्जलैः प्रोक्षेद्गृहं तथा॥ ४७

जो मिट्टीके पात्र घृतादिक रसों से परिपूर्ण हों उनको न त्यागै, तदनंतर गोमय (गौका गोबर) और जल से घर को लीपै॥ ४७॥

ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसंभवे। कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत्॥ ४८॥

(प्रश्न) यदि ब्राह्मण के व्रण में पीव और रुधिर हो और कृमि उत्पन्न होजायँ तौ उसका प्रायश्चित्त क्या है? ॥४८॥

गवां मूत्रपुरीषेण दधिक्षीरेण सर्पिषा। त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा च कृमिदष्टः शुचिर्भवेत्॥४९॥

(उत्तर) जिस ब्राह्मण के व्रण में

कृमि ने काटा हो वह गौके मूत्र, गोवर, दही, दूध और घृत में तीन दिन स्नान करके और इन्हीं पांचों वस्तुओं को मिलाकर पान करने से शुद्ध होता है। ४६

क्षत्रियोपि सुवर्णस्य पंचमाषान् प्रदायतु। गोदक्षिणांतु वैश्यस्या-प्युपवासं विनिर्दिशेत् ॥५०॥

और यदि क्षत्रिय के व्रण में कृमि पडगये हों तौ सुपात्र ब्राह्मण को पांच माशे सुवर्ण दान देकर तथा वैश्य गोदान और उपवास करके शुद्ध होता है ५०

शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो-दानेन शुध्यति। अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदंति क्षितिदेवताः ५१ प्रणम्य शिरसा ग्राह्यमग्निष्टो-मफलं हि तत्। जपच्छिद्रं तप-च्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि ॥५२॥

शूद्रको उपवास करने की आज्ञा नहीं है वह केवल दान देने ही से शुद्ध होजाता है जब ब्राह्मण 'अच्छिद्रमस्तु' ऐसा वचन उच्चारण करैं तब मस्तक नवाय कर और प्रणाम करके उस वच-नको ग्रहण करने से अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है। जपमें तथा तप में अथवा यज्ञ में छिद्र हो ॥ ५१ ॥ ५१ ॥

सर्वं भवति निश्छिद्रं ब्राह्मणै-रुपपादितम्। व्याधिव्यसनि नि-श्रांते दुर्भिक्षे ह्यथवा भये ॥५३॥

और ब्राह्मण उसे 'अच्छिद्रमस्तु' कहदें तौ वह सम्पूर्ण कर्म निच्छिद्र हो-जाता है। व्याधि, व्यसन, थकावट तथा दुर्भिक्ष अथवा किसीका भयहो तौ ५३

उपवासोव्रतोहोमो द्विज संपा-दितानि वा। अथवा ब्राह्मणास्तु-ष्टाः सर्वे कुर्वंत्यनुग्रहम् ॥ ५४ ॥

जो उपवास, व्रत तथा होम इत्या-दिक ब्राह्मणों की आज्ञासे किये जावें और वे विधिपूर्वक न होसकें तब यदि सम्पूर्ण ब्राह्मण प्रसन्न होकर उस उप-वासादि करने वाले पर अनुग्रह करके 'अच्छिद्रमस्तु' यह वचन कहैं ॥५४॥

सर्वान् कामानवाप्नोति द्विजसं-पादितैरिह। दुर्वलेऽनुग्रहः प्रोक्त-स्तथा वै बालवृद्धयोः ॥ ५५ ॥

तौ उन उपवासादिकों से संपूर्ण काम-नाओं की प्राप्ति होती है। दुर्वल तथा बालक और वृद्ध के ऊपर कृपा करनी योग्य है ॥ ५५ ॥

ततोऽन्यथा भवेद्दोषस्तस्मान्ना-नुग्रहःस्मृतः। स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोपि वा ॥५६॥

इन के सिवाय और किसी पुरुषपर व्रत होम आदिक में अनुग्रह करने से दोष होता है। स्नेहसे वा लोभसे अथवा भय से तथा अज्ञान से ॥ ५६ ॥

कुर्वंत्यनुग्रहं ये तु तत्पापं तेषु ग-

च्छति । स्वस्थस्य मूढा कुर्वंति वदंत्यनियमं तु ये ॥ ५७ ॥

जो अनुग्रह करते है वे उस पतितके पाप में भागी होते हैं, जो मन्दबुद्धि पुरुष स्वस्थों के लिये नियमका उपदेश नहीं करते ॥ ५७ ॥

ते तस्य विघ्नकर्तारः पतंति नरकेऽशुचौ ॥ स्वयमेव व्रतं कृत्वा ब्राह्मणं योवमन्यते ॥ ५८ ॥

उनके प्रायश्चित्त में विघ्न करनेवाले वे पुरुष अशुचि नाम नरक में गिरते हैं जो पुरुष ब्राह्मण से आज्ञालिये बिना अपने आप ही प्रायश्चित्त के निमित्त व्रत करते हैं ॥ ५८ ॥

वृथा तस्योपवासःस्यान्न स पुण्ये न युज्यते । स एव नियमोग्राह्यो यमेकोपि वदेद्द्विजः ॥ ५९ ॥

उनका व्रत निष्फल होता है उनको उस व्रतका पुण्य नहीं होता।जिस नियम (व्रत) के करनेके निमित्त एक ब्राह्मण भी आज्ञादे वह नियम करने योग्यहै॥५९॥

कुर्याद्वाक्यं द्विजानां तु अन्यथा भ्रूणहा भवेत् । ब्राह्मणाजंगमं तीर्थं तीर्थभूता हि साधवः॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणों का वाक्य अवश्य मानने योग्य है उनका वचन उल्लंघन करनेसे गर्भ हिंसा का पाप होता है ब्राह्मण जंगम (घर बैठे कृतार्थ करने वाला) तीर्थ है और साधु भी तीर्थ हैं ॥ ६० ॥

तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यंति मलिनाजनाः । ब्राह्मणायानि भाषंते मन्यंते तानि देवताः ६१

मलिन (पापी पुरुष) उन ब्राह्मणों के वाक्यरूप जलसे शुद्ध होते हैं, उत्तम ब्राह्मण जो वचन कहते हैं उसे देवता भी मानते हैं ॥ ६१ ॥

सर्वदेवमयोविप्रोन तद्वचनमन्यथा । उपवासोव्रतं चैव स्नानं तीर्थं जपस्तपः ॥ ६२ ॥

वेदाभ्यासी सदाचारयुक्त ब्राह्मण सर्व देवमय हैं, उनका वचन मिथ्या नहीं होता वे ब्राह्मण जिसके उपवास व्रत, तथा स्नान, तीर्थ अथवा जप तप इत्यादि को ॥ ६२ ॥

विप्रैः संभाषितं यस्य संपूर्णं तस्य तत्फलम् । अन्नाद्ये कीटसंयुक्ते मक्षिका केशदूषिते ॥६३॥

यह संपूर्णहो ऐसा कहदेते हैं उन उपवासादिकों के करनेवाले को पूर्णफल प्राप्त होता है जिस अन्नादिकों को कृमि वा मक्षिका (मक्खी)आदिने दूषित किया हो तथा केश पडा होतो उसे निकालकर॥

तदंतरा स्पृशेच्चापः तदन्नं भस्मना स्पृशेत् । भुंजानश्चैव योविप्रः पादं हस्तेन संस्पृशेत्॥६४॥ स्वमुच्छिष्टमसौ भुंक्ते योभुंक्ते भुक्तभाजने । पादुकास्थोन भुंजी-

त पर्यंकस्थः स्थितोपि वा ॥६५॥

जलसे हाथधोवै और उस अन्नपर किंचिन्मात्र भस्म डालै तौ वह अन्न शुद्ध होता है जो ब्राह्मण भोजन करता हुआ हाथ से चरणको स्पर्श करता है अथवा भोजन किये हुये पात्र में भोजन करता है वह अपना उच्छिष्ट भोजन करता है खडाऊं पहिरे हुए तथा पलँगपर बैठे हुये अथवा खडे होकर भोजन करै ६४॥६५

श्वानचांडालदृक्चैव भोजनं परिवर्जयेत् । यदन्नं प्रतिषिद्धं स्यादन्नशुद्धिस्तथैव च ॥ ६६ ॥

जिस भोजन पर श्वान वा चांडालकी दृष्टि पडीहो उसे त्यागदे। जो अन्न निषिद्ध है और उनकी शुद्धि ॥ ६६ ॥

यथा पराशरेणोक्तं तथैवाहं वदामिवः।शृतं द्रोणाढकस्यान्नं काकश्वानोपघातितम् ॥ ६७ ॥

जिसप्रकार पराशर जी ने कही है उसीप्रकार मैं तुम्हारे प्रति कहता हूं। जो द्रोण और आढकभर शृतअन्न (द्रवपकान्न जैसाकि खीर इत्यादि) को काक वा श्वान ने दूषित किया हो तो॥

केनेदं शुध्यते चेति ब्राह्मणेभ्यो- निवेदयेत् । काकश्वानावलीढं तु द्रोणान्नं न परित्यजेत् ॥६८॥

उस अन्न को ब्राह्मणों के निवेदन करके उनसे पूछे कि यह अन्न किसप्रकार शुद्ध होगा जो शुद्धि वे बतलावें वही शुद्धि उस अन्न की करै, जो द्रोण भर अन्न को काक वा श्वान ने चाटा हो तौ उस अन्न का त्याग नहीं करै किंतु ब्राह्मण उसकी जैसी शुद्धि बतलावें वैसी शुद्धि करले ॥ ६८ ॥

वेदवेदांगविद्विप्रैर्धर्मशास्त्रानुपालकैः । प्रस्थाद्द्वात्रिंशतिर्द्रोणः स्मृतोद्विप्रस्थआढकः ॥ ६९ ॥

वेद और वेदांगके जानने वाले और धर्मशास्त्र के अनुकूल आचरण करनेवाले ब्राह्मणों ने कहा है, कि–बत्तीस प्रस्थ का एकद्रोण होता है और दो प्रस्थका आढक कहाजाता है ॥ ६९ ॥

ततोद्रोणाढकस्यान्नंश्रुतिस्मृतिविदोविदुः।काकश्वानावलीढं तु गवाघ्रातं खरेण वा ७०

द्रोण और आढकभर अन्न को जो काक वा श्वान ने चाटाहो अथवा गौ वा गधेने सूँघा हो तौ ॥ ७० ॥

स्वल्पमन्नं त्यजेद्विप्रः शुद्धिर्द्रोणाढके भवेत् ॥ अन्नस्योद्धृत्य तन्मात्रं यच्चलालाहतं भवेत् ७१

उसमें से किञ्चिन्मात्र अन्न को त्याग करदेने से शुद्धि होजाती है, ऐसा श्रुति और स्मृति के जाननेवालोंने कहा है, जितने अन्न में उसकी राल टपकी हो उतने अन्न को निकालकर शेष को ७१

१-आठ तोलेकी १ प्रसृति और ६४ प्रसृतिका १आढक होता है ॥

सुवर्णोदकमभ्युक्ष्य हुताशेनैव तापयेत्। हुताशनेन संस्पृष्ट-सुवर्णसलिलेन च ॥ ७२ ॥ विप्राणां ब्रह्मघोषेण भोज्यं भवति स्नेहोवा गोरतत्क्षणात्॥ सोवापि तत्रशुद्धिः कथं भवेत्॥ ७३ ॥

सुवर्ण के जलसे छिड़ककर अग्निसे तप्त करै, क्योंकि-अग्नि से सन्तप्त करने से, सुवर्णका जल छिड़कने से और ब्राह्मणों के वेदोच्चारण करने से वह अन्नभक्षण करने के योग्य होजाता है। घृतादिक स्नेह अथवा गोरस (दुग्ध) यदि अशुद्ध होगये हों तौ उनकी शुद्धि किस प्रकार होती है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अल्पं परित्यजेत्तत्र स्नेहस्योत्प्लवनेन च ॥ अनलज्वालया शुद्धिर्गोरसस्य विधीयते ॥७४॥

इतिश्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

उसमें से थोड़ासा निकाल कर स्नेहदिक को उछालकर शुद्ध करै और गोरस को तप्त करके शुद्ध करले ॥ ७४ ॥

इतिश्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकाया षष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

अथातोद्रव्यशुद्धिस्तु पराशरवचोयथा। दारवाणान्तु पात्राणां तक्षणात् शुद्धिरिष्यते ॥ १ ॥

अब इसके अनंतर द्रव्यों की शुद्धि जिसप्रकार पराशरजी ने कही है वर्णन करते हैं, काष्ठ के पात्रों की शुद्धि उनको छीलडालने से होजाती है॥१॥

मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि। चमसानां स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥ २ ॥

और यज्ञके कर्म में यज्ञपात्रों की शुद्धि हाथ से मार्जन करदेने से होती है, तथा चमस और स्रुवे की शुद्धि उष्ण जलसे होती है ॥ २ ॥

भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति। रजसा शुध्यते नारी विकलं यानगच्छति ॥ नदीवेगेन शुध्येत लेपोयदि न दृश्यते। ३ ॥

कांसी के पात्र भस्म से और ताम्र पात्र खटाई से शुद्ध होते हैं, जो स्त्री नीच जाति से संग न करै तौ रजोवती होकर शुद्ध होजाती है। और यदि नदी में किसी अशुद्ध वस्तु का लेपन होय तौ वह वेग अर्थात्-प्रवाह से शुद्ध होती है ॥ ३ ॥

वापीकूपतडागेषु दूषितेषु कथंचन। उद्धृत्य वै कुम्भशतं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

वापी, कूप तथा तड़ागादिक किसी प्रकार से अशुद्ध होगये हों तो उनमें से

सौघड़े जल निकालकर पंचगव्य से शुद्ध होते हैं ॥ ४ ॥

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ५ ॥

आठ वर्षकी कन्याको गौरी और नौ वर्षकी को रोहिणी कहतेहैं और दशवर्षकी कन्या कहलाती है उसके उपरांत रजस्वला होती है ॥ ५ ॥

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति । मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरोऽनिशम्॥

जो पुरुष बारहवें वर्ष तक कन्यादान नहीं करता तौ उसके पितर प्रत्येक मास में उस कन्याके रजका पान करते हैं ॥

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठोभ्राता तथैव चात्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ७ ॥

रजस्वला कन्याको देखकर माता पिता और बड़ा भ्राता ये तीनों नरक को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

यस्तां समुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणोमदमोहितः । असंभाष्योह्यपांक्तेयः सविप्रोवृषलीपतिः ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मण अज्ञानसे उस कन्या को विवाहै उससे संभाषण करना योग्य नहीं वह वृषलीपति कहाता है अतएव पंक्ति से बाहर करने योग्य है ॥ ८ ॥

यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः । सभैक्ष्यभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्विशुद्ध्यति ॥ ९ ॥

यदि कोई ब्राह्मण एक रात्रिभी वृषली का सेवनकरै तौ भिक्षान्न भोजन और गायत्री मंत्रका जप करता हुआ तीनवर्ष में शुद्ध होता है ॥ ९ ॥

अस्तं गते यदा सूर्ये चाण्डालं पतितं स्त्रियम् । सूतिकां स्पृशते चैव कथं शुद्धिर्विधीयते ॥ १० ॥

(प्र०) जो ब्राह्मण सूर्य अस्त होनेके अनंतर चांडाल पतित (अपने कर्मोंको छोडकर अन्य जातिका कर्म करनेवाला) वा सूतिका स्त्री का स्पर्श करै तौ किसप्रकार शुद्ध होता है ? ॥ १० ॥

जातवेदं सुवर्णं च सोममार्गं विलोक्य च । ब्राह्मणानुमतश्चैव स्नानं कृत्वा विशुध्यति ॥ ११ ॥

(उ०) ब्राह्मणकी आज्ञा से स्नान करके तदनंतर अग्नि सुवर्ण और चंद्रमा का दर्शन करै यदि उस समय चंद्रोदय न हुआ होतौ जिस दिशा में चंद्रमा हो उस दिशाका दर्शन करै ! ॥ ११ ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणी तथा । तावत्तिष्ठेन्निराहारा त्रिरात्रेणैव शुध्यति १२

जो दो रजस्वला ब्राह्मणी परस्पर स्पर्श

करैं तौ प्रत्येक तीनदिन व्रत करने से शुद्ध होती है ॥ १२ ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रिया तथा। अर्द्धकृच्छ्रं चरेत्पूर्वा पादमेकं त्वनन्तरा॥ १३ ॥

यदि ब्राह्मणी और क्षत्रिया रजस्वला होकर परस्पर (आपस में) एक दूसरी को स्पर्श करलेय तौ ब्राह्मणी अर्द्धकृच्छ्र और क्षत्रिया चतुर्थांश (चौथाई) कृच्छ्र करके शुद्ध होती है ॥ १३ ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी वैश्यजा तथा। पादहीनं चरेत्पूर्वा पादमेकमनन्तरा ॥ १४ ॥

यदि ब्राह्मणी और वैश्यकी पुत्री रजस्वला होकर परस्पर एक दूसरीको स्पर्श करलेयँ तौ ब्राह्मणी पादोन (पौन) कृच्छ्र व्रत करकै और वैश्य पुत्री चौथाई कृच्छ्रव्रत करकै शुद्ध होती है । १४ ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजा तथा। कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्रा दानेन शुद्ध्यति १५

यदि ब्राह्मणी और शूद्रपुत्री रजस्वला होकर परस्पर एक दूसरीको स्पर्श करलेय तौ ब्राह्मणी पूर्ण कृच्छ्रव्रत करके और शूद्रपुत्री दान करके शुद्ध होती है॥

स्नाता रजस्वला या तु चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति। कुर्याद्रजोनिवृत्तौ तु दैवपित्र्यादिकर्म च॥१६॥

रजस्वला चौथे दिन स्नान करकै शुद्ध होती है और रजकी निवृत्ति (रुकावट) होनेपर देवकर्म तथा पितृकर्म करै १६

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं तु प्रवर्त्तते। नाशुचिः सा ततस्तेन यस्माद्वैकारिकं मतम् ॥ १७ ॥

रोगके कारण जिस स्त्रीके प्रति दिन रजः स्राव (रजका निकलना) होय वह स्त्री उस रजसे अपवित्र नहीं होती है क्योंकि-वह रज विकारका है ॥ १७ ॥

साध्वाचारा न तावत्स्याद्रजो यावत्प्रवर्त्तते। रजोनिवृत्तौ गम्या स्त्री गृहकर्मणि चैव हि ॥१८॥

जबतक रजकी प्रवृत्ति रहती है तबतक स्त्री सत्कर्म में अधिकारिणी नहीं होती है और पति के सहवास योग्य तथा गृहके कार्य करने के योग्य भी नहीं होती है ॥ १८ ॥

प्रथमेहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी। तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥ १९ ॥

स्त्री रजस्वला होने पर प्रथम दिन चांडाली सदृश, द्वितीयदिन ब्रह्महत्यारीकी सदृश, तृतीय दिन (धोबिन) की सदृश और चौथेदिन शुद्ध होजाती है १९

आतुरेस्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः। स्नात्वा स्पृशेदेनंततः

शुद्धयेत् स आतुरः ॥ २० ॥

रोगयुक्त स्त्री रजस्वला होजाय और यदि रुग्ण अवस्था में ही उसके स्नान का दिन आजाय तो कोई नीरोग व्यक्ति क्रमसे दशवार स्नान कर २ के उसको स्पर्श करै तब वह रोगयुक्त स्त्री शुद्ध होजाती है ॥२० ॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः । उपोष्य रजनीमेकां पंचगव्येन शुद्धयति २१

यदि किसी उच्छिष्ट (जूंठमुख) शूद्र अथवा श्वानसे स्पर्श करकै कोई पुरुष किसी ब्राह्मण को स्पर्श करलेय तौ वह ब्राह्मण एकरात्रि उपवास करने के अनन्तर पञ्चगव्य भक्षण करके शुद्ध होता है ॥ २१ ॥

अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्पर्शे स्नानं विधीयते । तेनोच्छिष्टेन संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् २२

अनुच्छिष्ट शूद्रके स्पर्श होजानेपर ब्राह्मणको स्नान करनेका विधान है और यदि कोइ उच्छिष्ट शूद्र स्पर्श करलेय तौ प्राजापत्य व्रत करै ॥ २२ ॥

भस्मना शुद्धयते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते । सुरामात्रेण संस्पृष्टं शुद्धयतेऽग्न्युपलेपनैः ॥२३॥

जिस कांसीके पात्र में मदिराका स्पर्श न हुआ हो वह भस्म से (राखसे मांजने पर) शुद्ध होजाता है और यदि मदिरा का स्पर्शमात्रभी होगया होय तौ वार२अग्नि डालकर मांजने से शुद्ध होता है॥२३॥

गवा घ्रातानि कांस्यानि श्वकाकोपहतानि च । शुद्धयन्ति दशभिः क्षारैः शूद्रोच्छिष्टानि यानि च ॥ २४ ।

गौओं करकै सूंघेहुए, काकके चोंच कगाएहुए और श्वान करके चाटेहुए तथा शूद्र के उच्छिष्ट (जूठे) करेहुए कांसी के पात्र दशवार खटाई आदि क्षार पदार्थ से रगड़कर धोनेसे शुद्ध होते हैं ॥

गण्डूषपादशौचं च कृत्वा वै कांस्यभाजने । षण्मासान् भुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत्॥२५॥

यदि किसी कांसी के पात्रमें गण्डूष (कुल्ला) कराहोय या पैर धोये होयँ तौ उस पात्रको छः मास पर्यंत पृथ्वी में गड़ा रक्खै और तदनन्तर उखाड़कर व्यवहार में लावै ॥ २५ ॥

आयसेष्वपसारेण सीसस्याग्नौ विशोधनम् । दन्तमस्थि तथा शृंगं रौप्यं सौवर्णभाजनम् २६ मणिपात्राणि शंखश्चेत्येतान् प्रक्षालयेज्जलैः । पाषाणे तु पुनर्घृष्टिरेषा शुद्धिरुदाहृता ॥ २७ ॥

लोहपात्रको दूर करदेनेसे और सीसे के पात्र को अग्नि में तपाने से तथा दांत

अस्थि, सींग, चांदी, सुवर्ण, मणि और पत्थर के पात्र और शंख इनकी जल से धो-लेने पर शुद्धि होजाती है और पाषाण के पात्र को जल से धोने के अनन्तर मांज भी लेना चाहिये, ऐसा करनेपर ही शास्त्र में उसकी शुद्धि कही है ॥२६।२७

मृण्मये दहनाच्छुद्धिर्धान्यानां मार्जनादपि ॥ २८ ॥

मृत्तिकाके पात्रकी जलाने से और धान्योंकी मलकर धोने से शुद्धि होती है।

अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम्। प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥ २९॥

बहुतसे धान्य और वस्त्रोंकी जल छिडकलेने मात्र से शुद्धि होती है और थोडे धान्य तथा वस्त्र होयँ तो उनकी धोने से शुद्धि होती है ॥ २९ ॥

वेणुवल्कलक्षीराणां क्षौमकार्पासवाससाम् । और्णनेत्रपटानां च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥३०॥

वाँस, वल्कल (भोजपत्रादि), फटे वस्त्र, रेशमीवस्त्र, सूतीवस्त्र, ऊनीवस्त्र, और नेत्रपट 'सन के वस्त्र, की प्रक्षालन करने से शुद्धि होती है ॥ ३० ॥

मुंजोपस्करशूर्पाणां शणस्य फलचर्मणाम् । तृणकाष्ठादिरज्जूनामुदकाभ्युक्षणं मतम् ॥ ३१ ॥

मूँज, उपस्कर (शिल-बटनी ऊखली आदि), शूर्प (छाज) सन, फल, चर्म तृण, काठ, रस्सी इनकी जल छिडकने से शुद्धि होती है ॥ ३१

तूलिकाद्युपधानानि रक्तवस्त्रादिकानि च । शोषयित्वार्कतापेन प्रोक्षणाच्छुद्धतामियुः ॥३२ ॥

तोसक, तकिया आदि शय्या की सामग्री लालवस्त्र आदि धूप में सुखाकर जल छिडकने से शुद्ध होजाते हैं ॥ ३२ ॥

मार्जारमक्षिकाकीटपतंगकृमिदर्दुराः । मेध्यामेध्यं स्पृशन्त्येव नोच्छिष्टान्मनुरब्रवीत् ॥ ३३ ॥

विडाल, मक्षिका, कीट, पतंग, कीडे और मेंडक, यह सब सदा शुद्ध अशुद्ध वस्तुओं का स्पर्श करते हैं, इस कारण इनके स्पर्श से कोई वस्तु अपवित्र नहीं होती है, ऐसा मनुजी का मत है ३३

महीं स्पृष्ट्वा गतं तोयं यश्चाप्यन्योन्यविप्रुष । भुक्तोच्छिष्टं तथा स्नेहं नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत्॥३४॥

जो जल पृथ्वी को स्पर्श करके अन्यत्र जलमें मिलगया है और जो एकसे उछटकर अन्यकेऊपर गई हुई छींटें हैं यदि भुक्तोच्छिष्ट (भोजन करकै बचा हुआ) होय तौ भी अपवित्र नहीं होता है इसीप्रकार भुक्तोच्छिष्ट स्नेह (घृत, तैल आदि) भी अशुद्ध नहीं होता है ऐसा मनुजी का मत है॥

ताम्बूलेक्षुफले चैव भुक्तस्नेहानु-

लेपने।मधुपर्के च सोमे च नोच्छि-ष्टं मनुरब्रवीत् ॥ ३५ ॥

ताम्बूल, इक्षुफल (गन्ना), जिसमें से कुछ कार्य में लायागया है ऐसा तैल और अनुलेपन (चन्दनादि) मधुपर्क तथा सोमरस में उच्छिष्टता नहीं होती है ऐसा मनुजीका कथन है ॥ ३५ ॥

रथ्याकर्दमतोयानि नावःपन्था-स्तृणानि च । मारुतार्केणशुध्य-न्ति पक्वेष्टकचितानि च ॥ ३६ ॥

रथ्या (गली-मार्गआदि) की कींच और जल, नाव, मार्ग और तृण तथा और पक्की ईंटों की चिनाई यह सब वायु और सूर्य के संयोग से शुद्ध होते हैं ॥

अदुष्टाः सन्तता धारा वातोद्धू-ताश्च रेणवः । स्त्रियोवृद्धाश्च बा-लाश्च न दुष्यन्ति कदाचन॥३७॥

चारों ओर फैली हुई जलकी निर्मल धारा और वायु से आकाश में उड़ाई हुई धूलि, वृद्ध स्त्री और बालक यह कदापि दूषित (अपवित्र) नहीं होते हैं॥

क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते । पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥ ३८ ॥ अग्निरापश्च वेदाश्च सोमसू-र्यानिलास्तथा । एते सर्वेऽपि वि-प्राणां श्रोत्रे तिष्ठन्ति दक्षिणे ३९

छींकलेने पर, थूकनेपर, दांतोंसे किसीअंगके उच्छिष्ट होजानेपर, असत्य बोलनेपर और पतितों के साथ भाषण करनेपर दाहिने कर्णका स्पर्श करे, क्योंकि अग्नि, जल, वेद, चन्द्रमा, सूर्य वायु यह सब ब्राह्मणों के दाहिने कर्ण में स्थित रहते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

प्रभासादीनि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा । विप्रस्य दक्षिणे कर्णे सान्निध्यं मनुरब्रवीत् ॥ ४० ॥

प्रभास आदि तीर्थ, और गंगा आदि नदियें ब्राह्मण के दक्षिण कर्ण में निवास करती हैं, ऐसा मनुजी का कथन है ॥

देशभंगे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि । रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत् ॥ ४१ ॥

देशका नाश होनेके समय, परदेशमें रोगयुक्त होनेपर और आपत्तियों के समय प्रथम सबप्रकार से अपने शरीर की रक्षा करै तदनन्तर धर्माचरण करै ॥

येन केन च धर्मेण मृदुना दा-रुणेन वा।उद्धरेद्दीनमात्मानं सम-र्थोधर्ममाचरेत् ॥ ४२ ॥

अपने ऊपर आपत्ति आनेपर कोमल वा कठोर जिस किसी उपायसे भी होसकै प्रथम अपने दीन (आपत्ति ग्रस्त)आत्मा का उद्धार करै, तदनन्तर समर्थ होकर धर्माचरण करै ॥ ४२ ॥

आपत्कालेतु सम्प्राप्ते शौचा-चारं न चिन्तयेत् । आत्मानमुद्ध-

रेत्पश्चात्स्वस्थोधर्मं समाचरेत् ४३
इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७॥

आपत्तिकाल के प्राप्त होनेपर शौचाचार का विचार न करै, प्रथम अपना उद्धार करै तदनन्तर स्वस्थ होकर धर्माचरण करै ॥ ४३ ॥

इतिश्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकाया
सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

गवां बन्धनयोक्त्रेषु भवेन्मृत्युरकामतः । अकामात्कृतपापस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥

यदि कोई गौ (बैल-या-गैया)बाँधने के खूँटेमें बँधी हुई (किसीप्रकार की अज्ञात पीडा को पाकर) अकामतः मरण को प्राप्त होजाय तौ तिस अकामकृत पापका प्रायश्चित्त किसप्रकार होना उचित है ? ॥ १ ॥

वेदवेदांगविदुषां धर्मशास्त्रं विजानताम् । स्वकर्मरतविप्राणां स्वकं पापं निवेदयेत् ॥ २ ॥

वेद वेदांग के जाननेवाले, धर्मशास्त्र के पारदर्शी सदा याग, यज्ञ और याजन (यज्ञ कराना) आदि अपने कर्ममें तत्पर ब्राह्मणों से अपना पाप कहै २

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामि उपस्थानस्य लक्षणम् । उपस्थितोहि न्यायेन व्रतादेशनमर्हति ॥ ३ ॥

यहांसे आगे, वह पापी पुरुष धर्मज्ञ ब्राह्मण के पास किसप्रकार जाय सो कहते हैं-न्यायमार्ग से अपने पास आये हुए पापी को ब्राह्मण व्रतकी आज्ञादें ३

सद्योनिःशंसये पापे न भुंजीतानुपस्थितः । भुंजानोवर्द्धयेत्पापं पर्षद्यत्र न विद्यते ॥ ४ ॥

यदि पाप का निश्चय होजाय तो धर्मज्ञ ब्राह्मणों के अर्थ उस पाप को बिना निवेदन करे भोजन न करै, यदि परिषत् (धर्मज्ञ ब्राह्मणों की मण्डली) के समीप बिनाजाय भोजन करलेय तौ पाप की वृद्धि होती है ॥ ४ ॥

शंसये तु न भोक्तव्यं यावत्कार्यविनिश्चयः । प्रमादस्तु न कर्त्तव्योयथैवाशंसयस्तथा ॥ ५ ॥

यदि पापमें संदेह होय तौ जबतक निश्चय न होजाय तबतक भोजन न करै, और जबतक निश्चय न होय तबतक असावधान भी नहीं रहना चाहिये ५

कृत्वा पापं न गूहेत गुह्यमानं विवर्द्धते । स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा धर्मविद्भ्योनिवेदयेत् ॥ ६ ॥

किया हुआ पाप थोडा हो चाहें अधिक हो उसको कदापि छिपावै नहीं किन्तु धर्मज्ञ ब्राह्मणों से निवेदन करदेय क्योंकि-छिपाने से पापकी वृद्धिहोतीहै॥

तेहि पापकृतां वैद्या हन्तारश्चै-

व पाप्मनाम् । व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धितन्तोरुजापहा ॥ ७ ॥

जिस प्रकार बुद्धिमान् वैद्य रोगी पुरुष के रोगको नष्ट करदेता है तिसी प्रकार योग्यपुरुष के अर्थ अपना निवेदन करने पर वह उस पापको नष्ट करदेताहै ॥७॥

प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने ह्रीमान् सत्यपरायणः । मृदुरार्जवसम्पन्नः शुद्धिं गच्छेत मानवः ॥ ८ ॥

(परिषद् की आज्ञा के अनुसार) पाप करनेवालेका उचित प्रायश्चित्त हो-जानेपर (पापकी दारुण) लज्जासे युक्त सत्यव्रत परायण, सरलस्वभाव पुरुष शुद्धि को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

सचैलं वाग्यतःस्नात्वा क्लिन्नवासाः समाहितः । क्षत्रियोवाथ वैश्योवा ततः पर्षदमाव्रजेत् ॥९॥

क्षत्रिय हो चाहें वैश्य हो, पापक संसर्ग होतेही मौन धारणकरके वस्त्रों सहित स्नान करै और तिस गीले वस्त्र को पहिनेहुए ही सावधानतासे परिषद् के पासजाय ॥ ९ ॥

उपस्थाय ततः शीघ्रमार्तिमान् धरणीं व्रजेत् । गात्रैश्च शिरसा चैव न च किंचिदुदाहरेत् ॥ १० ॥

जहांतक होसके शीघ्रता के साथ परिषद् के समीप जाकर विनयपूर्वक शिर और शरीर से पृथ्वी में प्राप्त होय अर्थात् साष्टांग प्रणाम करै और कुछ कहैं नहीं ॥ १० ॥

सावित्र्याश्चैव गायत्र्याः सन्ध्योपास्त्यग्निकार्ययोः । अज्ञानात्कृषिकर्त्तारोब्राह्मणा नामधारकाः ॥ ११ ॥

जो वेद और गायत्री को नहीं जानते हैं, सन्ध्योपासना और अग्नि में आहुति दान नहीं करते हैं । सदा केवल खेती का कार्य करनेमेंही तत्पर रहते हैं वह नाममात्र के ब्राह्मण हैं ॥ ११ ॥

अव्रतानाममंत्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् । सहस्रशः समेतानां परिषत्वं न विद्यते ॥ १२ ॥

व्रत मात्र से रहित और जाति के नाममात्र से जीविका करनेवाले जो ब्राह्मण हैं वह सहस्रों इकट्ठे हों तौ भी परिषद् नहीं कहासक्ती है ॥ १२ ॥

यद्वान्ति तमोमूढाः मूर्खाधर्ममतद्विदः । तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तुरधिगच्छति ॥ १३ ॥

अज्ञान रूप अंधकार से मूढ़ धर्मशास्त्र के न जाननेवाले मूर्ख ब्राह्मण प्रायश्चित्त की व्यवस्थादें तौ पापी पाप से छूटजाताहै परंतु वह पाप सौगुना होकर व्यवस्था देनेवालोंके शरीर में प्रवेश कराते हैं १३

अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः । प्रायश्चित्ती

भवेत्पूतः किल्विषं परिषद्व्रजेत् ॥ १४ ॥

जो धर्मशास्त्र को न जानकर प्रायश्चित्त की व्यवस्था देते हैं, पापी पुरुष तौ उस व्यवस्था के अनुसार शुद्ध होता है परन्तु वह पाप व्यवस्था देने वाली उस परिषद् के शरीर में प्रवेश करता है १४

चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः । स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रशः ॥ १५ ॥

चार अथवा तीन वेदवेत्ता ब्राह्मण जो व्यवस्था देते हैं वहही धर्म है अन्य सहस्रों पुरुषों का वाक्य भी धर्म नहीं होसक्ता ॥ १५ ॥

प्रमाणमार्गं मार्गन्तो ये धर्मं प्रवदन्ति वै। तेषामुद्विजते पापं सद्भूतगुणवादिनाम् ॥ १६ ॥

प्रमाण के मार्ग को ढूंढते हुए जो धर्मशास्त्र की व्यवस्था देते हैं, उनसे पाप भय मानता है और वहही वास्तविक धर्मके कहनेवाले हैं ॥ १६ ॥

यथाश्मनि स्थितं तोयं मारुतार्केण शुद्ध्यति । एवं परिषदादेशान्नाशयेदेव दुष्कृतम् ॥१७॥

जिसप्रकार शिला पै स्थित जल वायु और सूर्य के द्वारा सूखजाता है तिसीप्रकार परिषद् की आज्ञा (व्यवस्था) से पापों का समूह नाशको प्राप्त होता है ॥

नैव गच्छति कर्त्तारं नैव गच्छति परिषदम् । मारुतार्कादिसंयोगात्पापं नश्यति तोयवत् ॥ १८ ॥

वायु और सूर्य के संयोग से सूखे हुये जलकी समान पाप नष्ट होजाते हैं और न वह पापकर्त्ताके शरीर में रहते हैं न परिषद् के शरीर में प्रवेशकरते हैं ॥

चत्वारो वा त्रयो वापि वेदवन्तोऽग्निहोत्रिणः । ब्राह्मणानां समर्था ये परिषत्सा विधीयते ॥ १९ ॥

वेदज्ञ, अग्निहोत्र करनेवाले, ब्राह्मणों में समर्थ पांच वा तीन पुरुषों की परिषद् कहाती है ॥ १९ ॥

अनाहिताग्नयो येऽन्येवेदवेदाङ्गपारगाः । पंच त्रयो वा धर्मज्ञाः परिषत् सा प्रकीर्तिता ॥२०॥

वेद वेदांगके पारगामी जो धर्मज्ञ ब्राह्मण आहिताग्नि (अग्निहोत्र करनेवाले) नहीं हैं, ऐसे पांच वा तीन पुरुषों के समूह को परिषद् कहते हैं ॥ २० ॥

मुनीनामात्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनाम् । वेदव्रतेषु स्नातानामेकोऽपि परिषद्भवेत् ॥ २१ ॥

ध्यान, धारणादि के द्वारा आत्मतत्व को जाननेवाले मुनि, यज्ञ करनेवाले और देवताओं के व्रत करनेवाले तथा स्नातक (वेदाध्ययन के अनंतर समावर्त्तका अंगरूप स्नान करनेवाला) इन में से एक पुरुषभी परिषद् होसक्ता है ॥

पंचपूर्वं मया प्रोक्तास्तेषां चासंभवे त्रयः । स्ववृत्तिपरितुष्टा ये परिषत्सा प्रकीर्तिता ॥ २२ ॥

ऊपर कहचुके हैं कि-पांच ब्राह्मणों की परिषद् होती है, परंतु वेदज्ञ पांच ब्राह्मण न मिलैं तौ शास्त्रोक्त निजवृत्तिमें संतुष्ट तीन ब्राह्मणों की भी परिषद् होसक्ती है ॥ २२ ॥

अत ऊर्द्धं तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः परिषत्त्वं न तेष्वस्ति सहस्रगुणितेष्वपि ॥ २३ ॥

इनके सिवाय जो केवल नाममात्र ब्राह्मण हैं (वेदज्ञ नहीं हैं) वह सहस्रों हों तौ भी परिषद् नहीं होसक्ती २३

यथा काष्ठमयोहस्ती यथा चर्ममयोमृगः । ब्राह्मणास्त्वनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ २४ ॥

जैसा काठका हस्ती, जैसा चर्म रचित मृग, वेदको न जाननेवाला ब्राह्मणभी तैसाही है, यह तीनों केवल नाममात्र धारण करनेवाले हैं ॥ २४ ॥

ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपस्तु निर्जलः। यथा हुतमनग्नौ च अमन्त्रो ब्राह्मणस्तथा ॥२५॥

जैसा शून्य ग्राम, जैसा निर्जल कूप, और जैसा अग्निरहित भस्म के ढेरमें हवन करना निष्फल है, तैसेही वेदमन्त्रों को न जाननेवाला ब्राह्मण भी निष्फलहै॥

यथा षंडोऽफलः स्त्रीषु यथा गौरुषराफला । यथा चाज्ञे फलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः॥ २६ ॥

जैसे नपुंसक का स्त्री संभोग निष्फल होता है, जैसे ऊषरभूमि निष्फल है और जैसे मूर्ख को दानदेना निष्फल है तैसे ही वेदमंत्रों को न जाननेवाला ब्राह्मण निषिद्ध है ॥ २६ ॥

चित्रं कर्म यथानेकैरंगैरुन्मील्यते शनैः । ब्राह्मण्यमपि तद्वत्स्यात्संस्कारैर्विधिपूर्वकैः ॥ २७ ॥

जिसप्रकार चित्रकारीका काम बहुत से अंगप्रत्यंगों के गठन से क्रम करके उन्मीलित होता है तिसीप्रकार विधिपूर्वक करेहुए गर्भाधानादि संस्कारोंसे ब्राह्मणत्व प्रकाशित होता है ॥ २७ ॥

प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्ति ये द्विजा नामधारकाः । ते द्विजाः पापकर्माणः समेता नरकं ययुः ॥२८॥

जो नाममात्र के ब्राह्मण प्रायश्चित्त की व्यवस्था देते हैं वह पापकर्मी हैं और सब नरकगति को पाते हैं ॥ २८ ॥

ये पठन्ति द्विजा वेदं पञ्चयज्ञरताश्च ये । त्रैलोक्यं धारयन्त्येते पञ्चेन्द्रियरताश्रयाः ॥ २९ ॥

जो ब्राह्मण वेद पढ़ते हैं और जो पञ्चयज्ञ करनेमें तत्पर रहते हैं, वह ही त्रिलोकीको धारण करते हैं और पञ्चेन्द्रिय

परायण मनुष्यों के आश्रय हैं॥ २९॥

संप्रणीतः श्मशानेषु दीप्तोऽग्निः सर्वभक्षकः। तथैव ज्ञानवान् विप्रः सर्वभक्षोऽपि दैवतम्॥३०॥

जिसप्रकार मंत्रों से संस्कार किया हुआ अग्नि श्मशान में सर्वभोक्ता है तिसी प्रकार ब्रह्मज्ञान के द्वारा संस्कार को प्राप्त हुआ ब्राह्मण सर्वभुक् और देवरूप होता है॥ ३०॥

अमेध्यानि च सर्वाणि प्रक्षिपन्त्युदके यथा। तथैव किल्बिषं सर्वं प्रक्षेप्तव्यं द्विजेऽमले॥ ३१॥

जिसप्रकार संपूर्ण अपवित्र पदार्थ जल में डाले जाते हैं तिसी प्रकार संपूर्ण पापों को निर्मल ब्राह्मण में डाले ३१

गायत्रीरहितोविप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत्। गायत्री ब्रह्मतत्वज्ञाः संपूज्यन्ते द्विजोत्तमाः॥३२॥

गायत्रीरहित ब्राह्मण शूद्रकी अपेक्षा भी अपवित्र है, गायत्री और ब्रह्मतत्वज्ञ ब्राह्मण श्रेष्ठ और पूजनीय हैं॥ ३२॥

दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न शूद्रोविजितेन्द्रियः। कः परित्यज्य दुष्टांगां दुहेच्छीलवतीं खरीम् ३३

ब्राह्मण दुःशील होय तौ भी उसका ही पूजन करै, शूद्र जितेंद्रिय होय तौभी उसका पूजन न करै, कौन पुरुष दूषित अंग गौ को त्यागकर सुशीला गर्दभी (गधैया) को दुहैगा? अर्थात् कोई नहीं॥

धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः। क्रीडार्थमपि यद्ब्रूयुः स धर्मः परमः स्मृतः॥ ३४॥

द्विज धर्मशास्त्ररूप रथपै चढकर और वेदरूपी खड्ग को धारण करके हास्यसे भी जो कुछ कहदै उसको परम धर्म जानै॥

चातुर्वेद्योऽविकल्पी च अङ्गविद्धर्मपाठकः। त्रयश्चाश्रमिणो मुख्याः परिषदेषा दशावरा॥३५॥

चारों वेदों का वेत्ता, निश्चित ज्ञान सम्पन्न वेदके अंगों का पारदर्शी और धर्मशास्त्र पढानेवाला इकला ही श्रेष्ठ परिषद् होसक्ता है, प्रधान आश्रमी दश हों तो भी मध्यम परिषद् होती है ३५

राज्ञां चानुमते चैव प्रायश्चित्तं द्विजोवदेत्। स्वयमेव न वक्तव्या प्रायश्चित्तस्य निष्कृतिः। ३६॥

राजाकी आज्ञाके अनुसार ब्राह्मण व्यवस्था देय, अपने आप कदापि व्यवस्था न देय॥ ३६॥

ब्राह्मणांश्च व्यतिक्रम्य राजा यत्कर्त्तुमिच्छति। तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमुपगच्छति॥३७॥

ब्राह्मणकी सम्मति विना राजा कोई व्यवस्था देदेय तौ उस पापीका पाप सौगुना बढकर राजाके शरीरमें प्रवेश करता है॥ ३७॥

प्रायश्चित्तं सदा दद्याद्देवताय तनाग्रतः। आत्मानं पावयेत्पश्चाज्जपन् वै वेदमातरम् ॥३८॥

देवमंदिरके सन्मुख बैठकर ब्राह्मण व्यवस्था देय, तदनन्तर वेदमाता गायत्री का जप करकै अपनेको शुद्ध करै ॥३८॥

सशिखं वपनं कृत्वा त्रिसंध्यमवगाहनम्। गवां गोष्ठे वसेद्रात्रौ दिवा ताः समनुब्रजेत् ॥ ३९ ॥

प्रायश्चित्त करने के समय प्रथम शिखा सहित शिरका मुण्डन करावै, त्रिकाल में स्नान करकै दिन में गौके पीछे२ फिरै और रात्रि के समय गोशाला में शयन करै॥

उष्णोवार्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम्। कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः४०

गरम वायु चलै, चाहै शीतल वायु चलै, चाहै आँधी चलती होय और चाहै वर्षा होती होयपरन्तु अपनी रक्षा की ओर ध्यान न देकर शक्ति के अनुसार गौ की रक्षा करै ॥ ४० ॥

आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा। खले भक्षयन्ती न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥ ४१ ॥

अपने या अन्य के घरमें, अथवा खेत में अथवा खल (पैर) में यदि गौ धान्यादि कुछ खाती होय तौ कुछ बोलै नहीं, बछड़ा गौ का दुग्ध पीता होय तौ भी कुछ न कहै ॥ ४१ ॥

पिबन्तीषु पिबेत्तोयं संविशन्तीषु संविशेत्। पतितां पंकमग्नां वा सर्वप्राणैः समुद्धरेत् ॥ ४२ ॥

गौ के जलपान करलेने पर जलपान करै, गौ के शयन करनेपर शयन करै, गौ के गिरपडने पर अथवा पंक (कीच) में धँसजानेपर सबप्रकार से शक्ति करकै उसको उठावै ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा यस्तु प्राणान्परित्यजेत्। मुच्यते ब्रह्महत्यादैर्गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च ॥ ४३ ॥

गौ और ब्राह्मण के लिये जो पुरुष प्राण त्यागकरता है, प्राणों को लगाकर भी गौ और ब्राह्मणों की रक्षा करनेवाला वह पुरुष ब्रह्महत्यादि सबप्रकार के पापों से छूटजाता है ॥ ४३ ॥

गोवधस्यानुरूपेण प्राजापत्यं विनिर्दिशेत्। प्राजापत्यन्तु यत्कृच्छ्रं विभजेत्तच्चतुर्विधम् ॥४४॥

गोवधके प्रायश्चित्त के निमित्त एक प्राजापत्य व्रत करनेकी व्यवस्था देय, प्राजापत्य नामक कृच्छ्र व्रतको चार भाग में विभक्त करै ॥ ४४ ॥

एकाऽहमेकभुक्ताशी एकाहं नक्तभोजनः। अयाचिताश्येकमहरेकाहं मारुताशनः ॥ ४५ ॥

एक दिन एक भुक्त (एक पाक भोजन करै) एक दिन रात्रि में भोजन

करै, अयाचित (विनामांगाहुआ) पदार्थ भोजन करै और एक दिन वायु सेवन करके रहै ॥ ४५ ॥

दिनद्वयं चैकभक्तोद्विदिनं नक्तभोजनः। दिनद्वयमयाची स्याद् द्विदिनं मारुताशनः ॥ ४६ ॥

दूसरे प्रकार के प्राजापत्यका यह नियम है, कि-दो दिन एक भुक्त रहै, दो दिन रात्रि में भोजन करै, दो दिन अयाचित वस्तु भोजन करै और दो दिन वायु सेवन करके रहै ॥ ४६ ॥

त्रिदिनं चैकभुक्ताशी त्रिदिनं नक्तभोजनः । दिनत्रयमयाची स्यात्त्रिदिनं मारुताशनः॥४७॥

तीसरे प्रकार के प्राजापत्यका यह नियम है कि-तीन दिन एक भुक्त रहै, तीन दिन रात्रि भोजन करै, तीन दिन अयाचित पदार्थ का भोजन करै और तीन दिन वायु सेवन करकै रहै ॥४७॥

चतुरहस्त्वेकभोजी चतुरहं नक्तभोजनःचतुर्दिनमयाची स्याच्चतुरहं मारुताशनः ॥ ४८ ॥

चौथे प्रकारका प्राजापत्य यह है, कि-चार दिन एकभुक्तरहै, चार दिन रात्रि में भोजन करै चार दिन अयाचित वस्तु भोजन करै, और चार दिन वायुसेवन करकै रहै ॥ ४८ ॥

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम्। विप्राय दक्षिणां दद्यात्पवित्राणि जपेद्द्विजः ४९

ऐसे चारों प्रकारके प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान पूर्ण होने पर ब्राह्मणोंको भोजन करावै और दक्षिणा देय, ब्राह्मण पवित्र मंत्रोंका जप करै ॥ ४९ ॥

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु गोघ्नः शुद्धो न संशयः ॥ ५०॥

इतिश्रीपाराशरीयेधर्मशास्त्रे ऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ब्राह्मणों को भोजन कराकै गोवध करने वाला शुद्ध होजायगा इस में कोई संशय नहीं है ॥ ५० ॥

इतिश्री पाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां मष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गवां संरक्षणार्थाय न दुष्येद्रोधबंधयोः ।तद्वधं तु न तं विद्यात्कामात् कामकृतं तथा ॥ १ ॥

रक्षा करनेकी इच्छासे यदि गौ को बांधाजाय अथवा रोककर रक्खाजाय तो दोष नहीं है, उस अवस्थामें गौका मरण होजाय तोभी वह कामकृत वा अकामकृत गोवध नहीं कहाजासक्ता ॥ १ ॥

अंगुष्ठमात्रः स्थूलोवा बाहुमात्रः प्रमाणतः । आर्द्रस्तु सपलाशश्च दण्ड इत्यभिधीयते ॥ २ ॥

अंगूठेकी समान स्थूल (मोटा) एक हाथका लंबा, गीला और पत्तों से युक्त

वृक्षकी शाखा दण्ड कहाताहै ॥ २ ॥

दंडादूर्ध्वं यदन्येन प्रहाराद्यदि पातयेत् । प्रायश्चित्तं तदा प्रोक्तं द्विगुणं गोवधेचरेत् ॥ ३ ॥

इस कहेहुए दण्डकी अपेक्षा बड़े दण्डे से जो पुरुष गौको ताड़ना करै तो उस को प्रायश्चित्त करना चाहिये और यदि उस प्रहारसे गौका मरण होजाय तो दुगना प्रायश्चित्त करे ॥ ३ ॥

रोधबंधनयोक्त्राणि घातश्चेति चतुर्विधम् । एकपादं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बंधने चरेत् ॥४ ॥ योक्त्रेषु तु त्रिपादंस्याच्चरेत् सर्वं निपातने । गोघाटे वा गृहे वापि दुर्गेष्वप्यसमस्थले ॥ ५॥ नदीष्वथ समुद्रेषु खातेष्वथ दरीमुखे । दग्धदेशे स्थितागावः स्तंभनाद्रोध उच्यते॥६॥

रोध-बन्धन-जोत और घात इन चारप्रकारसे गौको पीड़ा देने पर प्राय श्चित्त करै । गौको रोकने पर एक पाद, बांधने पर दो पाद, जोतने में तीन पाद और प्रहार से प्राणवध करने में संपूर्ण चतुष्पाद प्रायश्चित्त करै, गौओंको चराने के स्थानमें, गृहमें, घेरमें, दुर्गम स्थान में, नदीमें समुद्रमें, गड्ढेमें, गुहामुखमें, और जलते हुए स्थानमें स्थित गौ रोकनेसे मरण होजाय तो उसको रोध कहते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

योक्त्रदामकडोरैश्च कंठाभरणभूषणैः । गृहे चापिवने वापि बद्धः स्याद्गोर्मृतोयदि ॥ ७ ॥

रस्सी, जोतकी रस्सी और घण्टा आदि कण्ठके भूषण से बंधेहुए गौ (बैल या गैया) का घरमें अथवा वनमें मरण हो जाय तो उसको बन्धन कहते हैं, यह दो प्रकारका होता है एक कामकृत और दूसरा अकामकृत ॥ ७ ॥

तदेव बंधनं विद्यात्कामाकामकृतं च यत् । हले वा शकटे पंक्तौ पृष्ठे वा पीडितोनरैः ॥ ८ ॥ गोपतिर्मृत्युमाप्नोति योक्त्रोभवति तद्वधः । मत्तः प्रमत्तउन्मत्तश्चेतनोवाऽप्यचेतनः ॥ ९ ॥ कामाकामकृतः क्रोधोदंडैर्हन्यादथोपलैः । प्रहता वा मृतावापि तद्धि हेतुर्निपातने ॥ १० ॥ मूर्छितः पतितो वापि दंडेनाभिहतः स तु । उत्थितस्तु यदा गच्छेत्पंच सप्तदशाथ वा॥११॥ ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वापि पिवेद्यदि । पूर्व्वव्याध्युपसृष्टश्चेत्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ १२ ॥

यदि मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, चेतन वा अचेतन होकर कामकृत (इच्छासे)

या अकामकृत (अनिच्छासे) क्रोध करके दंड या पत्थरके द्वारा गौके ऊपर प्रहार करै, उससे अत्यन्त पीडित होय या गौ मरणको प्राप्त होजाय तो उसको निपातन वा प्रहार के द्वारा गोवध कहते हैं। दण्डके प्रहार से पीडित होकर यदि गौ मूर्छित होजाय या गिरपड़े और फिर उठकर चलनेलगे अर्थात्–गौ यदि प्रहारकी पीड़ासे मुक्त होजाय तौ प्रायश्चित्त नहीं होताहै ८॥९॥१०॥११॥१२॥

पिंडस्थे पादमेकं तु द्वौपादौ गर्भसंते। पादोनं व्रतमुद्दिष्टं हत्वा गर्भमचेतनम्॥ १३॥

पिण्डरूप गौका गर्भ नष्ट करनेपर एक पाद, गर्भ में स्थित बछड़े के हाथ पैर आदि अंग उत्पन्न होगए हों उसको नष्ट करनेपर दोपाद, और चेतनता हीन पूर्णशरीर गर्भ के वत्स को नष्ट करनेपर तीनपाद व्रतका अनुष्ठान करै॥ १३॥

पादेंगरोमवपनं द्विपादे श्मश्रुणोपि च। त्रिपादे तु शिखावर्जं सशिखं तु निपातने॥ १४॥

एकपाद व्रत करने में शरीर के रोम दूरकरै, दो पाद प्रायश्चित्त में श्मश्रु (दाढ़ी मूछ) पर्यन्त मुण्डन करावै पादोन (पौन) प्रायश्चित्त में शिखा को छोड़कर समस्त मुण्डन करावै और निपातन अर्थात् चतुष्पाद पूर्ण प्रायश्चित्त करना होय तौ शिखासहित संपूर्ण मुण्डन करावै॥

पादे वस्त्र युगं चैवद्विपादेकांस्यभाजनम्। त्रिपादे गोवृषं दद्याच्चतुर्थे गोद्वयं स्मृतम्॥१५॥

एकपाद प्रायश्चित्त में वस्त्रका जोड़ा, दोपाद प्रायश्चित्त में कांसी का पात्र, पादोन (पौन) प्रायश्चित्त में एक वृष और चतुष्पाद पूर्ण प्रायश्चित्त में दो गौ देय॥ १५॥

निष्पन्नसर्वगात्रस्तु दृश्यते वा सचेतनः। अंगप्रत्यंगसंपूर्णो द्विगुणं गोव्रतं चरेत्॥ १६॥

अंग प्रत्यंग युक्त गौके संपूर्ण चेतन गर्भ को गिराने से गोवध से दूना प्रायश्चित्त करै॥ १६॥

पाषाणेनैव दंडेन गावोयेनाभिघातिताः। शृंगभंगे चरेत्पादं द्वौपादौ नेत्रघातने॥ १७॥

पाषाण अथवा दण्डसे प्रहार करके जो पुरुष गौ के सींग तोड़देय तो एकपाद, और नेत्रफोड़देय तौ दोपाद व्रत करै॥

लांगूले पादकृच्छ्रं तु द्वौ पादावस्थिभंजने। त्रिपादं चैव कर्णेतु चरेत्सर्वं निपातने॥ १८॥

इस प्रहार से पूंछ तोड़देय तौ एक पाद कृच्छ्रव्रत, हड्डी टूटजाय तौ दोपाद कृच्छ्रव्रत, कान टूटजाय तौ तीन पाद कृच्छ्रव्रत और संपूर्ण शरीर भग्न होजाय तो पूर्ण चतुष्पाद व्रत करै॥ १८॥

शृंगभंगेऽस्थिभंगे च कटिभंगे तथैव च। यदि जीवति षण्मासान्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ १६ ॥

सींग टूटजाय, हड्डी टूटजाय अथवा कमर टूटजाय और उसके अनन्तर यदि गौ छः मास पर्यन्त जीवित रहै तौ प्रायश्चित्त नहीं होता है ॥ १९ ॥

व्रणभंगे च कर्तव्यः स्नेहाभ्यंगस्तु पाणिना। यवसश्चोपहर्तव्योयावद्दृढबलोभवेत् ॥ २० ॥

प्रहार से गौ के शरीर में घाव होजाय तौ जबतक वह अच्छा नहीं होय तबतक अपने हाथ से उस व्रण में घृत तैलादि लगाता रहै, वह गौ जिस समय पर्यन्त दृढ़ और बलवान् न होय तबतक उसके लिये हरी हरी घास ला ला कर खिलावै।

यावत्संपूर्णसर्वांगस्तावत्तं पोषयेन्नरः। गोरूपं ब्राह्मणस्याग्रे नमस्कृत्य विसर्जयेत् ॥ २१ ॥

जबतक गौ नीरोग नहीं होय तबतक उसका पोषण करै तदनन्तर ब्राह्मण को नमस्कार करकै उस नीरोग गौ को छोड़देय ॥ २१ ॥

यद्यसंपूर्णसर्वांगोहीनदेहोभवेत्तदा। गोघातस्य तस्यार्द्धं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥

उस गौ के अंग यदि पहले की समान पूर्णरीति से आरोग्य नहीं होयँ, शरीर का कोई अंग हीन रहजाय तौ गोहत्या पापके प्रायश्चित्त से आधा प्रायश्चित्त करै॥

काष्ठलोष्ठकपाषाणैः शस्त्रेणैवोद्धतोबलात्। व्यापादयति योगां तु तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत्॥२३॥

कोई उद्धत पुरुष काष्ठ (काठ) लोष्ठ (ढेला आदि) पाषाण अथवा शस्त्र से बल पूर्वक (जबरदस्ती) गोहत्या करै तौ वह किसप्रकार शुद्ध होसक्ता है सो कहते हैं ॥ २३ ॥

चरेत्सांतपनं काष्ठे प्राजापत्यं तु लोष्ठके। तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रेणैवातिकृच्छ्रकम् ॥ २४ ॥

काष्ठ से हत्या करनेपर सान्तपन व्रत, लोष्ठ से हत्या करनेपर प्राजापत्य व्रत, पाषाण से हत्या करनेपर तप्तकृच्छ्र और शस्त्र से गोहत्या करनेपर अतिकृच्छ्र व्रतका अनुष्ठान करै ॥ २४ ॥

पंचसांतपने गावः प्राजापत्ये तथा त्रयः। तप्तकृच्छ्रे भवंत्यष्टावतिकृच्छ्रे त्रयोदश ॥ २५ ॥

सान्तपन व्रतमें पाँच गौ, प्राजापत्य में तीन गौ, तप्तकृच्छ्र में आठ गौ और अतिकृच्छ्र व्रत में तेरह गौ दानकरना चाहिये ॥ २५ ॥

प्रमापणे प्राणभूतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम्। तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः ॥ २६ ॥

गौ आदि के प्रायश्चित्त के परिमाण के अनुसार उसके अनुरूप (उसी परिमाण की) गौ आदि पुण्य करै अथवा उसके ही अनुसार मूल्य (कीमत) दे देय, भगवान् मनुजी का ऐसा कथन है॥

अन्यत्रांकनलक्ष्मभ्यां, वाहने मोचने तथा। सायं संगोपनार्थं च न दुष्येद्रोधबंधयोः॥ २७॥

भार वा गाडी आदि लेचलनेके लिये चरनेको छोडनेके लिये और सायंकालको रक्षाके लिये गौके शरीरमें यदि कोई विशेष चिन्ह करनेको रोध वा बन्धन कराजाय तौ उससे कोई दोष नहीं होता है॥ २७॥

अतिदाहेतिवाहे च नासिकाभेदने तथा। नदीपर्वतसंचारे प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्॥ २८॥

दाग देने के समय यदि अधिक दग्ध होजाय, अतिअधिक बोझ लेजानेके लिये लादाजाय यदि नाथा जाय, अथवा यदि कष्टदायक नदी पर्वतके मार्गसे ले जाया जाय तो प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ २८॥

अतिदाहे चरेत्पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत्। नासिक्ये पादहीनं तु चरेत्सर्वं निपातने॥ २९॥

अधिक दग्ध करनेपर एकपाद, अधिक बोझा लादने पर दो पाद, नासिका छेदने परतीन पाद और एक साथ इन सब पापोंके करने पर पूर्ण चतुष्पाद प्रायश्चित्त करै॥ २९॥

दहनात्तु विपद्येत अनड्वान्योक्त्रयंत्रितः। उक्तं पराशरेणैव ह्येकपादं यथा विधिः॥ ३०॥

बन्धनकी दशामें अथवा खुले हुए दुहनेके समय गौका मरण होजाय तौ विधि पूर्वक एक पाद प्रायश्चित्त करै, ऐसा पराशर ऋषिने कहा है॥ ३०॥

रोधनं बंधनं योक्त्रं भारः प्रहरणं तथा। दुर्गप्रेरणयोक्त्रं च निमित्तानि वधस्य षट्॥ ३१॥

रोध, बन्धन, योक्त्र (जोतना), अधिक भार लादना, प्रहार और जोतकर नदी पर्वतादि दुर्गम स्थानों में लेजाना, इन छःओं में प्रत्येक बधका कारण है॥

बंधपाशसुगुप्तां गोर्म्रियते यदि गोपशुः। भवने तस्य पापःस्यात्प्रायश्चित्तार्द्धमर्हति॥ ३२॥

यदि कोई गौ रस्सी में बँधे हुए प्राणत्याग करदेय तौ गृह के स्वामी को अर्द्धकृच्छ्र व्रत करना चाहिये॥ ३२॥

न नारिकेलैर्नच शाणवालैर्न चापि मौंजैर्न च बन्धशृंखलैः। एतैस्तु गावोननिबंधनीयाबध्वा तु तिष्ठेत्परशुं गृहीत्वा॥ ३३॥

नारिकेल (नारियल) की रस्सी, सनकी रस्सी, मूँजकी रस्सी अथवा लोह की जंजीरें से गौ अथवा वृषको कदापि न बाँधै और यदि बाँधै तौ फरसा हाथ में लिये सर्वदा समीप बैठा रहे।

कुशैः काशैश्च बध्नीयाद् गोपशुं दक्षिणामुखम्। पाशलग्नाग्निदग्धेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते॥

गौ अथवा अन्य पशुको दक्षिणमुख करके कुश अथवा काँस से बाँधै, यदि उसमें अग्नि लगकर पशुका शरीर जलजाय तौ प्रायश्चित्त करने की विधि नहीं है ॥ ३४ ॥

यदि तत्र भवेत्काष्ठं प्रायश्चित्तं कथं भवेत्। जपित्वा पावनीं देवीं मुच्यते तत्र किल्विषात् ॥ ३५॥

यदि उस स्थानमें तृण होयँ और उस रस्सीमें लगीहुई अग्नि तृणों में लगकर पशुका प्राणान्त करदेय तौ पवित्र करने वाली गायत्री का जप करकै पाप से मुक्ति होती है ॥ ३५ ॥

प्रेरयन् कूपवापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन्गवाशनेषु विक्रीणंस्ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥ ३६ ॥

कूप अथवा तालाव में गौ को प्रेरण करनेपर, वृक्ष काटकर गौ के ऊपर डालनेपर अथवा किसी गोभक्षक के हाथ गौ बेच देनेपर पूर्ण गोहत्या का पाप होता है ॥

आराधितस्तु यः कश्चिद् भिन्नकक्षोयदा भवेत् । श्रवणं हृदयं भिन्नं मग्नोवा कूपसंकटे॥ ३७ ॥ कूपादुत्क्रमणं चैव भग्नोवा ग्रीवपादयोः । सएव म्रियते तत्र त्रीन्पादांस्तु समाचरेत् ॥ ३८ ॥

विपत्ति से उद्धार करने के लिये सब प्रकार की चेष्टा करनेपर भी यदि पूर्वोक्त किसी कारण से गौ का वक्षस्थल, कान अथवा हृदय सा कोई भाग भग्न होजाय अथवा यदि गौ किसी कूप आदि में गिरपड़ै और उसको तिस कूपमें से निकालनेके समय पैर अथवा ग्रीवा टूटजाय और इसकारण तत्काल या कुछकालके अनन्तर गौ का मरण होजाय तो उसके पापसे मुक्त होने के लिये तीनपाद प्रायश्चित्त करै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

कूपखाते तटीबंधे नदीबंधे प्रपासु च। पानीयेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३९ ॥

कूप के समीप के गड्ढे (चौबचे) में सरोवर नदी के बँधे हुए घाट पै, प्रपा (पौ) ओं पै जलपान करने के लिये जाकर यदि गौ का मरण होजाय तौ किसीप्रकार का प्रायश्चित्त करने की विधि नहीं है ॥ ३९ ॥

कूपखाते तटीखाते दीर्घखाते तथैव च। स्वल्पेषु धर्मखातेषु प्राय-

श्चित्तं न विद्यते ॥ ४० ॥

कूप के समीपका गडहा, नदी वा जलाशय के समीप का गडहा, दीर्घखात (बडागडहा) वा साधारण जल पीने का गडहा इन में गिरकर गौ का मरण होजाय तौ उसके निमित्त किसीप्रकार का प्रायश्चित्त न करै ॥ ४० ॥

वेश्मद्वारे निवासेषु योनरः खातमिच्छति । स्वकार्यं गृहखातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४१ ॥

घरके द्वारपर अथवा घरके भीतर यदि कोई गडहा खोदै, अथवा अपने प्रयोजन के लिये वा सर्व साधारण के निमित्त वा स्थान बनाने के निमित्त गडहा खोदै और यदि उसमें गिरकर गौ का मरण होजाय तौ प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ४१ ॥

निशि बंधानिरुद्धेषु सर्पव्याघ्रहतेषु च । अग्निविद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४२ ॥

रात्रि में गौ को बाँधकर रोककै रख लेने पर यदि सर्पके काटने से वा अग्नि तथा वज्राघात (बिजली गिरने) से यदि उस गौ का मरण होजाय तौ प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता नहीं है ४२

ग्रामघाते शरौघेण वेश्म भंगनिपातने । अतिवृष्टिहतानां च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४३ ॥

यदि बाणों से ग्राम पीडित होय, घर टूटकर गिरपडै वा अतिवृष्टि होय इन तीनों में किसी कारण से गौ का मरण होजाय तौ प्रायश्चित्त नहीं होता है ॥ ४३ ॥

संग्रामेपहतानां च ये दग्धावेश्मकेषु च । दावाग्निग्रामघातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४४ ॥

जो गौ संग्राम में, घरमें अग्नि लगने के समय ग्राम को किसी के घेर लेनेपर वा दावाग्नि (दौं) से भस्म होजाने से मरण को प्राप्त होयँ उनका प्रायश्चित्त नहीं होता है ॥ ४४ ॥

यंत्रिता गौ चिकित्सार्थं गूढगर्भविमोचने । यत्ने कृते विपद्येत प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४५ ॥

यदि चिकित्सा करनेके लिये गौ को किसी प्रकार की पीडा दीजाय अथवा (दूषित) गर्भ दूर करना होय, उसमें शक्तिके अनुसार यत्न करने परभी यदि गौ का मरण होजाय तो प्रायश्चित्त नहीं होता है ॥ ४५ ॥

व्यापन्नानां बहूनां च रोधने बधनेपि वा । भिषङ्मिथ्याप्रचारेण प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४६ ॥

बहुत सी गौ अथवा बैलों को यदि एक स्थान में बाँधकर वा रोककर रक्खा होय और यदि अनभिज्ञ (अनजान) चिकित्सक से चिकित्सा कराने में गौ वा वृषभ का मरण होजाय तौ गोवध का प्रायश्चित्त करै ॥ ४६ ॥

गोवृषाणां विपत्तौ च यावंतःप्रेः-क्षका जनाः ॥ अनिवारय तां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत्॥४७॥

गौ अथवा बैल की अपमृत्यु (अकाल-मृत्यु) के समय जो अपने नेत्रोंसे देखकर भी उस को तिस आसन्न मृत्युसे छुटाने की चेष्टा नहीं करते हैं उन सबों को गोहत्या के पापका भागी होना पड़ता है ॥ ४७ ॥

एकोहतोयैर्बहुभिःसमेतैर्न ज्ञायते यस्य हतोभिघातात्। दिव्येन तेषामुपलभ्य हंता निवर्तनीयो-नृपसन्नियुक्तैः ॥ ४८ ॥

यदि बहुत से पुरुष एकत्र इकट्ठे होकर किसी गौ अथवा बैलके ऊपर डेले पत्थर आदि फेंकके पीड़ा दें और उससे यदि पशुका मरण होजाय और हत्या करने वाले का निश्चय न होसके तौ राजा अपने कर्मचारियों के द्वारा उन में से प्रत्येक को शपथ दिलाकर उस पशुकी हत्या करने वाले का निश्चय करै ।४८

एका चेद्बहुभिः काचिद्दैवाद्व्यापादिता क्वचित्। पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक्४९

यदि बहुतसे पुरुषोंके आघातसे किसी एक गौ का मरण हुआ होय तो उन प्रहार करने वालोंमें प्रत्येक को अलग २ गोवधका चतुर्थांश प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ४९ ॥

हते तु रुधिरं दृश्यं व्याधिग्रस्तः कृशोभवेत्। लाला भवति दृष्टेषु एवमन्वेषणं भवेत् ॥ ५० ॥

ग्रासार्थं चोदितोवापि अध्वानं नैव गच्छति। मनुना चैवमेकेन सर्वशास्त्राणि जानता। प्रायश्चित्तं तु तेनोक्तं गोघ्नश्चांद्रयणं चरेत्५१

गौका मरण होने पर उसके रुधिर के चिन्हसे हत्याकारी को जाने अथवा उन सब में जो रोगीहोजाय, दुर्बल(शुष्कमुख) होय, देखते ही मुख से लार टपकने लगै जो ग्रासके निमित्त प्रेरणा करने पर भी मार्गको नजाय इस प्रकार हत्याकारी का अन्वेषण करै, सर्वशास्त्रोंको जानने वाले अद्वितीय भगवान् मनुने गोहत्यामात्रमें चान्द्रायण व्रतका अनुष्ठान करने की व्यवस्था दी है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमाचरेत्। द्विगुणे व्रतआदिष्टे दक्षिणा द्विगुणा भवेत्॥ ५२ ॥

गोहत्या के प्रायश्चित्तके समय जो केश रखना चाहै उसको द्विगुण प्रायश्चित्त करना चाहिये और द्विगुण प्रायश्चित्त की द्विगुण दक्षिणा भी देनी चाहिये ॥ ५२ ॥

राजा वा राजपुत्रोवा ब्राह्मणोवा बहुश्रुतः। अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ५३ ॥

राजा–राजपुत्र वा बहुज्ञानी ब्राह्मण केशोंका मुंडन न कराकरभी प्रायश्चित्त करसक्ता है ॥ ९३ ॥

यस्य न द्विगुणन्दानङ्केशश्वपरिरक्षितः।तत्पापं तस्य तिष्ठेत त्यक्त्वा च नरकं ब्रजेत् ॥ ५४ ॥

जो पुरुष केश रक्खै और द्विगुण प्रायश्चित्त न करै वा द्विगुण दक्षिणा नहीं देय तौ उसका पाप नष्ट नहीं होता है औरऐसी व्यवस्था देनेवाला नरकगति को प्राप्त होताहै ॥ ९४ ॥

यत्किंचित् क्रियते पापं सर्वं केशेषु तिष्ठति । सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदंगुलद्वयम् ॥५५॥

जो कुछपाप कियाजाता है वह सब केशोंमें वासकरता है इसकारण संपूर्ण केशोंको हाथमें पकड़कर अग्रभागके दो२ अंगुल केश कटवादेय ॥ ९९ ॥

एवं नारी कुमारीणां शिरसो मुंडनं स्मृतम् । न स्त्रियां केशवपनं न दूरे शयनासनम् ॥५६॥

यह व्यवस्था केवल कुमारी और सधवा (जिनका पतिजीवित है ऐसी) स्त्रियोंके निमित्त हीहै, इन स्त्रियोंके संपूर्ण मुण्डन और दूरस्वतन्त्रशयन अथवा स्वतन्त्र भोजन विधान नहींहै ॥ ९६ ॥

न च गोष्ठे वसेद्रात्रौ न दिवागा अनुब्रजेत् । नदीषु संगमे चैव अरण्येषु विशेषतः ॥ ५७ ॥

यह स्त्रियें रात्रिमें गोशालामें शयन और दिनमें गौके पीछे२ गमन न करैं,विशेष करकै नदीपै, जनसमूह केस्थानमें और जंगलमें जाना उनके लिये अनुचितहै॥

न स्त्रीणामजिनं वासोव्रतमेवं समाचरेत् । त्रिसंध्यं स्नानमित्युक्तं सुराणामर्चनं तथा ॥५८॥

स्त्रीकदापि मृगचर्म न ओढै, तीनोंकालमें स्नान और देवपूजन करै ॥ ९८ ॥

बन्धुमध्ये व्रतं तासां कृष्णचान्द्रायणादिकम् । गृहेषु सततं तिष्ठेच्छुचिर्नियममाचरेत् ॥ ५९ ॥

स्त्रियें कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रतोंको बान्धवोंके मध्यमें हीकरैं, उनको सदागृहमें स्थित रहकर सकल पवित्र नियमोंको पालन करना चाहिये ॥ ९९ ॥

इह योगोवधं कृत्वा प्रच्छादयितुमिच्छति । सयाति नरकं घोरं कालसूत्रमसंशयम् ॥ ६० ॥

जो इस लोकमें गोवध करकै उसको गुप्तरखने की इच्छा करताहै,वह निःसन्देह कालसूत्र नामक घोर नरकको प्राप्त होता है ॥ ६० ॥

विमुक्तोनरकात्तस्मान्मर्त्यलोके प्रजायते । क्लीबोदुःखी च कुष्ठी च सप्तजन्मानि वै नरः ॥ ६१ ॥

उस भयानक नरक से छूटने पर भी उसको फिर मनुष्य योनिमें जन्मधारण कर बहिरा, दुःखी और कुष्ठरोगी होकर क्रमसे सातजन्म वितानेपडते हैं ॥ ६१॥

तस्मात्प्रकाशयेत्पापं स्वधर्मं सततं चरेत्। स्त्रीबालभृत्यगोभृत्येष्वतिकोपं विवर्जयेत् ॥६२॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥९॥

इसकारण पाप करकै उसको कदापि छुपावै नहीं, प्रकाश करदेय और स्त्री, बालक, भृत्य, गौ तथा ब्राह्मण के ऊपर कदापि कोप न करै ॥ ६२ ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

चातुर्वर्ण्येषु सर्वेषु हीयं प्रोक्ता तु निष्कृतिः। अगम्या गमने चैव शुद्धौ चांद्रायणं चरेत्॥१॥

ब्राह्मण क्षत्रियादि चारों वर्णोंके पाप से छूटनेका उपाय कहते हैं, अगम्य स्थानोंमें गमन करनेपर जोपाप होते हैं चांद्रायणव्रतका अनुष्ठान करकै उससे शुद्धि होतीहै ॥ १ ॥

एकैकं ह्रासयेद्ग्रासं कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत्। अमावस्यां न भुंजीत ह्येष चांद्रायणे विधिः ।२।

कृष्णपक्षमें प्रतिदिन एक२ ग्रास कमकरै और शुक्लपक्षमें प्रतिदिन एक२ग्रास-बढावै, अमावास्याके दिन कुछ भोजन न करै यह चान्द्रायणकी विधि है ।२॥

कुक्कुटांगप्रमाणं तु ग्रासं वै परिकल्पयेत्। अन्यथा जातदोषेण न धर्मोन च शुध्यते॥ ३॥

ग्रास मुर्गीके अण्डेकी बराबर बडा बनावै जो पुरुष इसके अन्यथा करै उसको न शुद्धजाने न धर्माचरण करनेवाला जाने ॥ ३ ॥

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम्। गोद्वयं वस्त्रयुग्मं च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम्॥ ४॥

प्रायश्चित्त का कार्य यथावत् होजाने पर ब्राह्मणोंको भोजन करावै, और प्रत्येक ब्राह्मणको दोगौ तथा एक जोड़ा वस्त्रदक्षिणा देय ॥ ४ ॥

चांडालीं वा श्वपाकीं वा ह्यनुगच्छति योद्विजः। त्रिरात्रमुपवासीच विप्राणामनुशासनात् ॥५॥

ब्राह्मण, चाण्डाली वा श्वपाकी के विषै गमन करने पर ब्राह्मणकी आज्ञा के अनुसार तीन रात्रि उपवास करै ५

सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्य द्वयं चरेत्। ब्रह्मकूर्चं ततः कृत्वा कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम्॥ ६ ॥

फिर शिखा सहित मुण्डन कराकर दो प्राजापत्य व्रत करै, तदन तर विधि

पूर्वक ब्रह्मकूर्च (गौका मूत्र,दधि , दुग्ध, घृत और कुशोंका जल इन सबको विधि पूर्वक पान) करके, भोजनादि से ब्राह्मणों को तृप्त करै ॥ ६ ॥

गायत्रीं च जपेन्नित्यं दद्याद्गोमिथुनद्वयम्। विप्राय दक्षिणां दद्याच्छुद्धिमाप्नोत्यसंशयम्।७।

तदनन्तर निरन्तर गायत्री का जप करै ब्राह्मणको गोमिथुन (एक गौ एक बैल) दक्षिणा देकर निःसन्देह शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

क्षत्रियोवाथवैश्योवा चांडलीं गच्छतोयदि । गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोब्रवीत्॥८॥

क्षत्रिय अथवा वैश्य यदि चाण्डाली से गमन करैं तो दो गौ दक्षिणा देकर शुद्धि होतीहै ऐसा पाराशरजीका कथनहै॥

प्राजापत्यद्वयं कुर्याद्दद्याद्गोमिथुनं तथा।श्वपाकीमथ चाण्डालीं शूद्रो वै यदि गच्छति ॥ ९ ॥

दो प्राजापत्य व्रतकरै और ब्राह्मण को गोमिथुन दानदेय शूद्र यदि श्वपाकी वा चाण्डाली से गमन करै तौ ॥ ९ ॥

प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं चतुर्गोमिथुनं ददेत् ॥ १० ॥

एक प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करै और ब्राह्मणको चार गो मिथुन दान देय ॥

मातरं यदि गच्छेत्तु भगिनीं स्वसुतां तथा। एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीणिकृच्छ्राणि संचरेत्११

अपनी माता, भगिनी और पुत्री के विषै अज्ञान से गमन करकै तीन कृच्छ्र व्रत करै ॥ ११ ॥

चांद्रायणत्रयं कुर्याच्छिश्नच्छेदेन शुद्ध्यति। मातृष्वसृगमे चैव आत्ममेढ्रनिकृंतनम् ॥ १२ ॥

तदनन्तर वह पुरुष तीन चान्द्रायण व्रत करकै अपनी लिङ्गेन्द्रिय को काटडालै और माताकी बहिनके विषै गमन करकै भी लिङ्गेन्द्रियको काटडालने पर ही शुद्धि होती है ॥ १२ ॥

अज्ञानेन तु यो गच्छेत्कुर्याच्चांद्रायणद्वयम् दशगोमिथुनं दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥ १३ ॥

अज्ञानसे यदि माताकी बहिनके विषैं गमन करै तौ दो चान्द्रायण व्रत करै और ब्राह्मणों को दस गौ और दस वृषभ दान करकै देय तब शुद्धि होती है ऐसा पाराशर जी का कथन है १३

पितृदारान्समारुह्य मातुराप्तां च भ्रातृजाम् । गुरुपत्नीं स्नुषां चैव भ्रातृभार्यां तथैव च ॥१४॥

मातुलानीं सगोत्रां च प्राजापत्यत्रयं चरेत् । गोद्वयं दक्षिणां दत्वा मुच्यते नात्र संशयः॥१५॥

जो पुरुष पिताकी स्त्री सौतेली माता) माताकी सखी, भ्राताकी पुत्री, गुरुकी स्त्री, पुत्रकी स्त्री, भ्राताकी स्त्री, मातुल- (मामा) की स्त्री तथा अपने गोत्रकी किसी कन्या के साथ गमन करै वह तीन प्राजापत्य व्रत करै और तदनन्तर दो गौ दक्षिणा देय तब निःसन्देह शुद्ध होजाता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

पशु वेश्यादि गमने महिष्यु-ष्ट्रींकपींस्तथा । खरींच शूकरीं गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् १६

पशु, वेश्या, महिषी, (भैंस), उष्ट्री (ऊंटनी), वानरी, गर्दभी और शूकरी से गमन करकै प्राजापत्यव्रत करै १६

गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकां ब्राह्मणेददेत् । माहिष्युष्ट्रखरी-गामी त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति १७

गौके विषैं गमन करने पर तीनरात्रि उपवास करकै ब्राह्मणको एक गौदान देय । महिषी, उष्ट्री और गर्दभीके साथ गमन करने वाला एक रात्रि दिन उप वास करकै भी शुद्ध होजाता है ॥१७॥

डामरे समरे वापि दुर्भिक्षे वा जनक्षये । वंदिग्राहे भयार्ते वा सदा स्वस्त्रीं निरीक्षयेत् ॥ १८ ॥

मारामारी काटाकाटी के समय, युद्ध के समय, दुर्भिक्ष के समय, जनपक्ष (हैजा महामारी आदि) के समय भय प्राप्त होनेके समय और कोई आक्रमण (हमला) करनेवाला बन्दी करकै ले-जाय उस समय, सदा अपनी स्त्रीकी ओर दृष्टि रक्खै ॥ १८ ॥

चांडालैः सह संपर्कं या नारी कुरुते ततः विप्रान्दश वरान् गत्वा स्वयं दोषं प्रकाशयेत् ॥ १९ ॥

जो स्त्री किसी चाण्डाल के साथ सह-वास करै वह दश श्रेष्ठ ब्राह्मणों के पास जाकर अपना दोष प्रकाशित करै॥१९॥

आकंठसंमिते कूपे गोमयोद-कर्दमे । तत्र स्थित्वा निराहारा त्वहोरात्रेण निष्क्रमेत् ॥ २० ॥ सशिखं वपनं कृत्वा भुंजीयाद्या-वकौदनम् । त्रिरात्रमुपवासित्वा त्वेकरात्रं जले वसेत् ॥ २१ ॥

गोवर के जल और कींच से भरे हुए कूप में कंठ पर्यंत मग्न होकर बिना भोजन करे हुए तहां एक रात्रिदिन रह कर निकले हुए यव भोजन करै, तद-नन्तर तीन रात्रि उपवास करकै एक रात्रि जल में वास करै ॥ २१ ॥

शंखपुष्पी लतामूलं पत्रं वा कु-सुमं फलम् । सुवर्णं पंचगव्यं च क्वाथयित्वा पिबेज्जलम् ॥२२॥

फिर शंख पुष्पी औषधिकी जड़,पत्ते फूल, फल और सुवर्ण तथा पञ्चगव्य इन सबको एकत्र पीसकर औटावै, तिस का जल पान करै ॥ २२ ॥

एकभक्तं चरेत्पश्चाद्यावत्पुष्पवती भवेत्। व्रतं चरति तद्यावत्तावत्संवसते बहिः ॥ २३ ॥

तदनन्तर जबतक रजस्वला होय तबतक एक अन्नका पकाहुआ भोजन दिन में एक वार पावै और जबतक यह व्रत पूर्ण नहीं होय तबतक घरसे बाहर निवास करै ॥ २३ ॥

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम्। गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिः पाराशरोऽब्रवीत् २४

इसप्रकार प्रायश्चित्त की समाप्ति होजाने पर ब्राह्मणों को भोजन कराकर दो गौ दक्षिणा देय इसप्रकार प्रायश्चित्त करने पर शुद्धि होती है ऐसा पाराशर जीका कथन है ॥ २४ ॥

चातुर्वर्ण्यस्य नारीणां कृच्छ्रंचांद्रायणव्रतम्। यथाभूमिस्तथा नारी तस्मात्तां न तु दूषयेत्॥२५॥

चारोंवर्णों की स्त्री दोषयुक्त होनेपर कृच्छ्रचान्द्रायण व्रत करै, भूमि और स्त्री दोनों समान हैं इसकारण उनको दूषित न करै ॥ २५ ॥

वंदिग्राहेण या भुक्ता हत्वा बध्वा बलाद्भयात्। कृत्वा सांतपनं कृच्छ्रं शुद्ध्येत्पाराशरोऽब्रवीत् २६

जो स्त्री बंदी करकै अन्यके द्वारा उपभोग करीगई है, अथवा प्रहार करकै कैद करकै, भय दिखाकर और बलपूर्वक (जबरदस्ती) अन्य पुरुषों करके जो स्त्री भोग करीगई है, पाराशर कहते हैं कि–वह स्त्री कृच्छ्र सांतपन व्रत करकै शुद्ध होती है ॥ २६ ॥

सकृद्भुक्ता तु या नारी नेच्छंती पापकर्मभिः। प्राजापत्येन शुद्ध्येत ऋतुप्रस्रवणेन च ॥ २७॥

जो स्त्री स्वयं इच्छा न करती हुई पापकर्म पुरुषों करके बलपूर्वक एकवार भोगीहुई है वह प्राजापत्य करकै और ऋतुधर्म होनेपर शुद्ध होजाती है ॥२७॥

पतत्यर्द्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत्। पतितार्द्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥२८ ॥

जिसकी स्त्री सुरा (मदिरा) पान करती है उसका आधा शरीर पतित होजाता है और जिसका आधाशरीर पतित होजाता है उसकी शुद्धि नहीं होती है अर्थात् निःसन्देह नरक गति को प्राप्त होती है ॥ २८ ॥

गायत्रीं जपमानस्तु कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ २९ ॥

कृच्छ्र सान्तपन व्रत करने के समय निरन्तर गायत्रीका जप करता रहै २९

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिः कुशोदनम्। एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ ३० ॥

गौका गोवर-मूत्र दूध-दही-घृत और कुशका जल पान करके एकरात्रि उपवास करना, कृच्छ्र सान्तपन कहाता है ॥ ३० ॥

जारेण जनयेद्गर्भं मृते त्यक्ते गते पतौ । तां त्यजेदपरेराष्ट्रे पतितां पापकारिणीम् ॥ ३१ ॥

पतिके परदेश जानेपर अथवा पतिको त्याग करकै या पतिका मरण होने के अनन्तर जो स्त्री अन्य पुरुष संयोग से गर्भ धारणकरै उस पतित पापचारिणीको अन्य राज्य में लाकर छोड़आवै॥

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसा समन्विता । सा तु नष्टा विनिर्दिष्टा न तस्या गमनं पुनः ३२

यदि कोई ब्राह्मणी परपुरुषके साथ चली जायतौ उसको नष्ट जानै, वह फिर लौटकर पतिके घर में नहीं आसक्ती है ॥ ३२ ॥

कामान्मोहाच्च या गच्छेत्त्यक्त्वा बन्धून् सुतान्पतिम् । सापि नष्टा परे लोके मानुषेषु विशेषतः ॥ ३३ ॥

काम अथवा मोह के वशीभूत होकर कोई स्त्री पति, पुत्र और बांधवोंको त्यागकर चली जायतौ वह परलोक में विशेषतः मनुष्य समाज (इसलोक) में नष्ट होजाती है ॥ ३३ ॥

मदमोहगता नीरा क्रोधादण्डादि ताडिता । अद्वितीयं गता चैव पुनरागमनं भवेत् ॥ ३४ ॥

जो स्त्री मद वा मोहसे अथवा क्रोध दण्ड से ताडन करने से विना किसीके पास जाके चलीआवै ॥ ३४ ॥

दशमे तु दिने प्राप्ते प्रायश्चित्तं न विद्यते । दशाहं न त्यजेन्नारी त्यजेन्नष्टां श्रुतां तथा ॥ ३५ ॥

यदि उस स्त्रीको गयेहुए दश दिन होजांय तौ प्रायश्चित्त करना नहीं चाहिये क्योंकि-दश दिन तक स्त्रीको न त्यागे परन्तु नष्टा सुनी जायतो उस को त्यागदे ॥ ३५ ॥

भर्ता चैव चरेत्कृच्छ्रं कृच्छ्रार्द्धं चैव बान्धवाः । तेषां भुक्त्वा च पीत्वा च अहोरात्रेण शुध्यति ३६

उस स्त्री का पति कृच्छव्रत और पतिके बांधव अर्द्ध कृच्छ्रव्रत करैं और उसकेघर जिसने भोजन कियाहो वा जलपान कियाहो वह अहोरात्र से (एकरातदिन भोजन न करने) से शुद्ध होता है । ३६ ।

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसा विवर्जिता । गत्वा पुंभिः समं याति त्यजेयुस्तां तु गोत्रिणः ॥ ३७ ॥

जो ब्राह्मणी निषेध करने परभी (अन्य) पुरुषके संग चलीजाय वह यदि दूसरे पुरुषका संग करके शीघ्र उसी अपने पतिके समीप आवेतौ सगोत्रीउसे त्यागदें॥

पुंसोयदि गृहं गच्छेत्तदा शुद्धं गृहं भवेत्। पितृमातृगृहं यच्च जारस्यैव तु तद्गृहम् ॥ ३८ ॥

यदि वह जार पुरुषके घरमें चलीआवे तो वहघर और उसस्त्रीके पिता-और माताका घर अशुद्ध होजाते हैं ॥ ३८ ॥

उल्लिख्य तद्गृहं पश्चात्पंचगव्येन सेचयेत्। त्यजेच्च मृण्मयं पात्रं वस्त्रं काष्ठं च शोधयेत् ॥ ३९ ॥

उस घरको खोदकर पीछे पंचगव्यसे छिड़के और मिट्टीके पात्रोंको फेंकदे वस्त्र तथा काष्ठके पात्रोंको शुद्ध करै ॥३९ ॥

संभारान्शोधयेत्सर्वान्गोकेशैश्च फलोद्भवान्। ताम्राणि पंच गव्येन कांस्यानि दश भस्मभिः॥

तथा फलकी सामग्रियों को गौके चवँरसे, तांबेकी वस्तुको पंचगव्यसे और कांसीकी वस्तुको दशबार भस्मलगाकर शुद्ध करना चाहिये ॥ ४० ॥

प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रोब्राह्मणैरुपपादितम्। गोद्वयं दक्षिणां दद्यात्प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ४१ ॥

वहब्राह्मण ब्राह्मणोंके कहेहुए प्रायश्चित्त को करै और दो गौ दक्षिणा दे तथा दो प्राजापत्य व्रत करै ॥ ४१ ॥

इतरेषामहोरात्रं पंचगव्यं च शोधनम्। उपवासैर्व्रतैः पुण्यैः स्नान संध्यार्चनादिभिः ॥ ४२ ॥

जप होमदयादानैः शुध्यन्ते ब्राह्मणाः सदा। आकाशं वायुरग्निश्च मेध्यं भूमिगतं जलम्॥ नदुष्यंति च दर्भाश्च यज्ञेषु च मसास्तथा॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

और इतर बन्धु अहोरात्र व्रत करके और पंचगव्य पान करकै तथा उपवास व्रत-पुण्य-स्नान-संध्या-पूजन-आदि से और जप होम- दया-दान-इन से ब्राह्मण आदि शुद्ध होते हैं, आकाश -पवन अग्नि और पृथ्वी में पड़ा हुआ जल तथा कुशा ये इसप्रकार अशुद्ध नहीं होते जैसे यज्ञों में चमसा (पात्र विशेष) अशुद्ध नहीं होता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे, दशमोऽध्याय ॥ १० ॥

अमेध्यरेतोगोमांसं चांडालान्नमथापि वायदि भुक्तं तु विप्रेण कृच्छ्रं चांद्रायणं चरेत् ॥ १ ॥

अशुद्ध पदार्थ, वीर्य, गौका मांस और चांडालका अन्न यदि इन वस्तुओंको ब्राह्मण ने भक्षण करालिया हो तो उसकी चांद्रायणव्रत करनेसे शुद्धिहोतीहै ॥१॥

तथैव क्षत्रियोवैश्यस्तदर्धं तु समाचरेत्। शूद्रोऽप्येवं यदा भुंक्ते प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २ ॥

तथा यदि क्षत्री ने इनको खा लिया हो तो अर्द्ध चांद्रायण व्रत करै और शूद्र भी इसी प्रकार खालेतो प्राजापत्य व्रत करकै शुद्धि होतीहै ॥ २ ॥

पंचगव्यंपिबेच्छूद्रो ब्रह्मकूर्चं पिबेद्द्विजः। एकद्वित्रि चतुर्गाश्च दद्याद्विप्राद्यनुक्रमात् ॥ ३ ॥

और शूद्र पंचगव्यको पान करै और द्विज ब्रह्म कूर्च को पीवै और ब्राह्मण आदि चारों वर्ण क्रमसे एक दो तीन और चार गौओं का दान करें ॥ ३ ॥

शूद्रान्नं सूतकस्यान्नम भोज्यस्यान्नमेवच। शंकितं प्रतिषिद्धान्नं पूर्वोच्छिष्टं तथैवच ॥ ४ ॥

शूद्रका अन्न सूतकका अन्न और अभोज्य (जिसका भोजन करना मने हो) का अन्न जिस में कुछ अशुद्ध आदिकी शंका हो वह अन्न निषिद्धों का अन्न और उच्छिष्ट अन्न ॥ ४ ॥

यदि भुक्तं तु विप्रेण अज्ञाना दापदापित्रा। ज्ञात्वा समाचरेत्कृच्छ्रं ब्रह्म कूर्चंतु पावनम् ॥५॥

इन अन्नोंको अज्ञानसे वा विपत्ति पड़ने के समय ब्राह्मण खाले तो उसको जानकर कृच्छ्रव्रत करै और पवित्र करने वाले ब्रह्मकूर्च व्रत को भी करै ॥५॥

व्यालैर्नकुलमार्जारैरन्नमुच्छिष्टिनं यदा। तिलदर्भोदकैःप्रोक्ष्य शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥ ६ ॥

सांप नोला बिलाव इन्होंने जिस अन्नको उच्छिष्ट (जूंठा) कियाहो तिल और कुशाका जल छिड़क ने से उस अन्नकी शुद्धि होतीहै इस में संशय नहीं है ॥ ६ ॥

शूद्रोप्यभोज्यं भुक्त्वान्नं पंचगव्येन शुद्ध्यति। क्षत्रियोवापि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुद्ध्यति॥७

शूद्रभी अभोज्य अन्नको खाकर पंचगव्य से शुद्ध होताहै और क्षत्रिय और वैश्य यदि अभोज्य अन्न को खाले तौ प्राजापत्य व्रत करने से शुद्ध होतेहैं ॥ ७ ॥

एकपंक्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने। यद्ये कोपित्यजेत पात्रंशेषमन्नं न भोजयेत् ॥ ८ ॥

संग भोजन करते और एक पंक्ति में ब्राह्मण बैठे हुए ब्राह्मणों में से यदि एक भी पात्र को त्याग दे अर्थात्—भोजन करते से खड़ा होजायतो सब ब्राह्मण शेष अन्न को न खांय ॥ ८ ॥

मोहाद्भुंजीतयस्तत्रपंक्तावुच्छिष्टभोजने। प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रः कृच्छ्रं सांतपनं तथा ॥ ९ ॥

उस पंक्तिमें उच्छिष्ट भोजन को जो अज्ञानता से खाता है वह ब्राह्मण सांतपन कृच्छ्र प्रायश्चित्त करै ॥ ९ ॥

पीयूषंश्वेतलशुनंवृंताकफलगृं-

जने। पलांडुं वृक्षनिर्यासंदेवस्वं-कवकानिच ॥ १० ॥

पेवची—स्वेतलहसन—वेंगन, गाजर (सलजम) वृक्षका गोंद—देवताका द्रव्य कवक (पृथवी की ढाक) ॥१०॥

उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरमज्ञानाद्भुंजते द्विजः। त्रिरात्रमुपवासेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ११ ॥

ऊंटनी और भेड़का दूध इनको जो द्विज अज्ञानता से खाता है यह तीन रात्रि उपवास और पंचगव्यसे शुद्ध होताहै॥

मंडूकं भक्षयित्वातुमूषिकामांसमेवच। ज्ञात्वाविप्रस्त्वहोरात्रं यावकान्नेनशुद्ध्यति ॥ १२ ॥

मेंडक और मूसे के मांसको जानकर ब्राह्मण खायतो अहोरात्र जौ खाकर शुद्ध होताहै ॥ १२ ॥

क्षत्रियश्चापिवैश्यश्च क्रियावंतौ शुचिव्रतौ। तद्गृहेषुद्विजैर्भोज्यं हव्यकव्येषु नित्यशः ॥ १३ ॥

जो क्रिया वाले क्षत्रिय वैश्य और शुद्ध व्रत (आचरण) करतेहैं उनके घर हव्य और कव्य (यज्ञ और श्राद्ध) में सदा भोजन करैं ॥ १३ ॥

घृतं क्षीरंतथातैलंगुडंतैलेन पाचितम्। गत्वानदीतटेविप्रो भुंजीयात् शूद्रभाजने ॥ १४ ॥

घी—दूध—तेल—तेलसे पका गुड इनको नदी के तटपर जाकर शूद्रके पात्र में भी खाले ॥ १४ ॥

मद्यमांसरतंनित्यं नीचकर्म प्रवर्तकम्। तंशूद्रंवर्जयेद्विप्रः श्वपाकमिवदूरतः ॥ १५ ॥

जो शूद्र मदिरा और मांस में रत हो और नीच कर्म में वर्तता हो उस शूद्रको श्वपाक के समान दूरसेही वर्जदे ॥१५॥

द्विजशुश्रूषणरतं मद्यमांसविवर्जितम्। स्वकर्मनिरतन्नित्यंतं शूद्रन्नत्यजेद्द्विजः ॥ १६

द्विजोंकी सेवा में तत्पर मदिरा और मांस विवर्जित और अपने कर्ममें तत्पर जो शूद्र उनका ब्राह्मण त्याग न करै१६

अज्ञानाद्भुंजतेविप्राः सूतके-मृतकेपिवा। प्रायश्चित्तं कथंतेषां वर्णेवर्णेविनिर्दिशेत् ॥ १७ ॥

जो ब्राह्मण अज्ञानसे सूतक वा मृतकमें जीमते हैं उनका प्रायश्चित्त वर्ण २ में कैसे कहाहै ॥ १७ ॥

गायत्र्याऽष्टसहस्रेण शुद्धिः स्याच्छूद्रसूतकेवैश्ये पंच सहस्रेण त्रिसहस्रेण क्षत्रिये॥१८॥

शूद्रकेसूतकमें आठ हजार गायत्री से वैश्यके में पांच हजार गायत्री से और क्षत्रियके में एक हजार गायत्री से शुद्धि होती है ॥ १८ ॥

ब्राह्मणस्य यदा भुंक्ते द्वेसहस्रं तुजापयेत् । अथवावामदेव्येन साम्ना चैकेन शुद्धयति ॥१६॥

यदि ब्राह्मणके सूतकमें खायतो दो हजार गायत्री जपे अथवावामदेव ऋषिके कहेहुऐ एक सामवेदसेहीशुद्ध होता है ॥

शुष्कान्नंगोरसंस्नेहं शूद्रवेपेण आहृतं । पक्कं विप्रगृहे भुंक्ते भोज्यंतं मनुरब्रवीत् ॥ २० ॥

शूद्रका अन्न और गोरस और स्नेह (घीआदि) येसब यदि शूद्रके घर से लाकर ब्राह्मण के घरपर पककर खा यतो वह भोजन के योग्य है यह मनुजी ने कहाहै ॥ २० ॥

आपत्कालेतु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि।मनस्तापेनशुद्धयेत द्रुपदां वासकृज्जपेत् ॥ २१ ॥

यदि आपत्काल में ब्राह्मणने शूद्रके घर भोजन करालिया होयतो मनके पश्चात्तापसे शुद्ध होताहै वा एकवार द्रुपदा मंत्र को जपै ॥ २१ ॥

दासनापितगोपाल कुलमित्रार्द्धसीरिणः। एतेशूद्रेषुभोज्यान्नाय श्चात्मानं विधीयते ॥ २२ ॥

दास – नाई—गोपाल कुलका मित्र अर्द्धसीरी (किसानका साझी) इतनों का और अपने आपे को ऐसे निवेदन कर दे कि मैं आपका हूं, उसका अन्नभोजन के योग्यहै ॥ १२ ॥

शूद्रकन्यासमुत्पन्नोब्राह्मणेनतुसंस्कृतः। असंस्काराद्भवेद्दासः संस्कारादेवनापितः ॥ २३ ॥

जो संतान ब्राह्मण से शूद्रकी कन्या में पैदा हो यदि उसका संस्कार न होय तो वह दास (धीमर) और संस्कार होयतो नापित (नाई) होताहै ॥ २१ ॥

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायांसमुत्पन्नस्तुयःसुतः। सगोपालइतिख्यातो भोज्योविप्रैर्नसंशयः ॥ २४ ॥

क्षत्रियसे जो पुत्र शूद्रकी कन्या में पैदाहो उसे गोपाल कहते हैं उसके यहां ब्राह्मण निःसंदेह भोजन करैं ॥ २४ ॥

वैश्यकन्यासमुद्भूतोब्राह्मणेनतु संस्कृतः। सह्यार्द्धिकइतिज्ञेयो भोज्योविप्रैर्नसंशयः ॥ २५ ॥

वैश्य की कन्या में जो पुत्र ब्राह्मण से पैदाहो और जिस के संस्कार भी हों उसे अर्धिक कहते हैं उसके यहांभी ब्राह्मण निःसंदेह भोजन करै ॥ २१ ॥

भांडस्थितमभोज्येषु जलं दधि घृतंपयः। अकामतस्तुयोभुंक्ते प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ २६ ॥

जिनका भोजन अनुचितहै उनके पात्र में रक्खे जल-दही-घी-दूध—इनको जो खाता है उसका प्रायश्चित्त कैसेहो॥

ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यः शूद्रोवा उपसर्पति।ब्रह्मकूर्चोपवासेनयाज्य

वर्णस्य निस्कृतिः ॥ २७ ॥

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र जो खांय तो यज्ञ के योग्य तीनों वर्णों का प्रायश्चित्त ब्रह्मकूर्च उपवाससे शुद्ध होता है॥

शूद्राणांनोपवासः स्याच्छूद्रोदानेनशुद्ध्यति। ब्रह्मकूर्चमहोरात्रं श्वपाकमपिशोधयेत्॥२८॥

और शूद्रों को उपवास नहीं करना चाहिये किंतु शूद्रदान से ही शुद्ध होताहै अहोरात्र का उपवास श्वपाक को भी शुद्ध करसक्ता है॥ २८॥

गोमूत्रगोमयंक्षीरं दधिसर्पिः कुशोदकम्। निर्दिष्टंपंचगव्यं च पवित्रं पापशोधनम् ॥ २९ ॥

गोमूत्र-गोवर-दूध-दही-घी-कुशाकाजल-यह पवित्र और पापों का नाश. करने वाला पंचगव्य कहाहै ॥ २९॥

गोमूत्रंकृष्णवर्णायाःश्वेतायाश्चैवगोमयम्। पयश्चताम्रवर्णायारक्तायागृह्यतेदधि ॥ ३० ।

काली गौका गोमूत्र,सफेद गौका गोवर, तांबेके रंगकी गौका का दूध, लाल गौका दही ॥ ३०॥

कपिलायाघृतंग्राह्यं सर्वंकापिलमथवा। मूत्रमेकपलंदद्यादंगुष्ठार्द्धं तुगोमयम् ॥ ३१ ॥

कपिलाका घी लेना अथवा कपिला ही के सबवस्तु लेवे, एक पल गौ मूत्र आधे अंगूठे भर गोमय ॥ ३१ ॥

क्षीरंसप्तपलंदद्याद् दधित्रिपलमुच्यते। घृतमेकपलंदद्यात्पलमेकं कुशोदकम् ॥ ३२ ॥

सातपल दूध तीन पल दही एक पलघी और एक पल कुशाका जल हो॥

गायत्र्यादायगेमूत्रंगंधद्वारेतिगोमयम्। आप्यायस्वेतिचक्षीरं दधिक्राव्णस्तथादधि ॥ ३३ ॥

गायत्री पढ़कर गोमूत्र ले गंधद्वारा इस मंत्रसे गोवर-आप्यायस्व इस मंत्रसे दूध दधिकाव्ण इस से दही ले ॥३३॥

तेजोसिशुक्र मित्याज्यंदेवस्यत्वाकुशोदकम्।पंचगव्यमृचापूतंस्थापयेदग्निसन्निधौ ॥ ३४ ॥

तेजोसिशुक्र--इस मंत्रसे घी देवस्यत्वा इस मंत्रसे कुशाका जल-इसप्रकार ऋचा से पवित्र करे हुए पंचगव्यको अग्नि के समीप रक्खै ॥ ३४ ॥

आपोहिष्ठेतिचालोड्यमानस्तोकेतिमंत्रयेत्। सप्तावरास्तुयेदर्भा अच्छिन्नाग्राः शुकत्विषः । ३५ ।

आपोहिष्ठा इस मंत्रसे चलावे मानस्तोके इस मंत्रसे मथे कमसे कम सात और जिन के, अग्रभाग हो और जो तोते की रंगकी हैं ॥ ३५ ॥

एतैरुद्धृत्यहोतव्यं पंचगव्यं

यथाविधि । इरावतीइदंविष्णुर्मा नस्तोकेचशंवती ॥ ३६ ॥

उन कुशाओंसे उठाकर विधि से पंचगव्यका होम करै इरावती-इदंविष्णु-मानस्तोके, शंवती ॥ ३६ ॥

एताभिश्चैवहोतव्यं हुतशेषंपिवेद्द्विजः । आलोड्यप्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेनतु ॥ ३७ ॥

इन ऋचाओं से होम करै और शेषको द्विज पान करै ओंकारसे ही चलाकर और ओंकार से मथकर ॥ ३७ ॥

उद्धृत्यप्रणवेनैव पिवेच्चप्रणवेनतु । यत्त्वगस्थिगतं पापं देहेतिष्ठतिदेहिनाम् ॥ ३८ ॥

और ओंकार से उठाकर ओंकारसे ही पीवे, जो त्वचा और हाड़ों में देहधारियों का पाप टिकताहै ॥ ३८ ॥

ब्रह्मकूर्चंदहेत्सर्वं यथैवाग्निरिवेन्धनम् । पवित्रंत्रिषुलोकेषु देवताभिरधिष्ठितम् ॥ ३९ ॥

उसको ब्रह्मकूर्च इस प्रकार दग्ध करताहै जैसे अग्नि ईंधनको भस्म करती है तीनों लोकों में पवित्र और देवताओं से अधिष्ठित (जिस में देवतारहें) पंचगव्य होताहै ॥ ३९ ॥

वरुणश्चैवगोमूत्रे गोमयेहव्यवाहनः । दध्निवायुः समुद्दिष्टः सोमः क्षीरेघृते रविः ॥ ४० ॥

गोमूत्रमें वरुण गोबर में अग्नि दधि में पवन दूध में चन्द्रमा घीमें सूर्य का निवास कहा है ॥ ४० ॥

पिवतःपतितंतोयंभाजने मुखनिःसृतम् । अपेयं तद्विजानीयाद्भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ४१ ॥

जल पीते हुए मनुष्यके मुखसे निकलाहुआ जल पात्र में गिरपडे तो वह जल पीने के अयोग्य है यदि उस पीले तो चांद्रायणव्रत करै ॥ ४१ ॥

कूपेचपतितं दृष्ट्वा श्वशृगालौ च मर्कटं । अस्थि चर्मादि पतिताः पीत्वा मेध्या अपोद्विजः ॥ ४२ ॥

कूप में पड़े हुए कुत्ता गीदड बंदर हाड़ चर्म इनको देखकर और उस अशुद्ध जलको पीकर ॥ ४२ ॥

नारं तु कुणपं काकं विड्वराहं खरोष्ट्रकं । गावयं सौप्रतीकं च मयूरं खड्गकं तथा ॥ ४३ ॥

और मनुष्य का देह कौआ विष्टासूकर गधा ऊंट गाय (नीलगाय) हाथी मोर गेंडा ॥ ४३ ॥

वैयाघ्रमार्क्षसैंहंवा कूपे यदि निमज्जति । तडागस्याऽपिदुष्टस्य पीतंस्यादुदकंयदि ॥ ४४ ॥

भेड़िया रीछ सिंह ये यदि कूपमें डूबजाय और निषिद्ध तालाव का जलभी यदि पियाजाए तो ॥ ४४ ॥

प्रायश्चित्तं भवेत्पुंसः क्रमेणैतेन सर्वशः । विप्रः शुद्धयेत्त्रिरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयात् ॥ ४५ ।

सब पुरुषोंका क्रमसे यह प्रायश्चित्त है कि ब्राह्मण तीन रात्रि, क्षत्रिय दो दिन के उपवाससे शुद्ध होता है ॥ ४५ ॥

एकाहेन च वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुद्धयति । परपाक निवृत्तस्य परपाकरतस्य च ॥ ४६ ॥

वैश्य एक दिनके, उपवास से शूद्रनक्त (रातका भोजन)से शुद्ध होता है जो दूसरे का बनाया हुआ न खाता हो और जो खाता हो ऐसे दो प्रकार के॥

अपचस्यचभुक्त्वान्नं द्विजश्चांद्रायणं चरेत् । अपचस्यतुयद्दानन्दातुरस्यकुतः फलं ॥ ४७ ॥

अपचका अन्न खाकर द्विज चांद्रायण व्रतकरै अपच को दान जो दे उसके दाता को फल नहीं होता ॥ ४७ ॥

दाताप्रतिगृहीता च द्वौतौनिरय गामिनौ । गृहीत्वाग्निं समारोप्य पञ्चयज्ञान्ननिर्वपेत् ॥४८॥

वोह दाता और ग्रहण करनेवाला यह दोनों नरक गामी होते है अग्निहोत्र का नियम करके ग्रहण पंचयज्ञ न करै ४८

परपाकनिवृत्तोसौ मुनिभिः परिकीर्तितः।पंचयज्ञान्स्वयं कृत्वा परान्ने नोपजीवति ॥ ४६ ॥

दूसरों का पकाया हुआ अन्न न खावे इसको मुनियों ने परपाक निवृत्ति कहा है और जो आप पांचयज्ञ करके पराये अन्न से जीवे ॥ ४९ ॥

सततंप्रातरुत्थाय परपाकरतस्तुसः । गृहस्थधर्मायोविप्रो ददातिपरिवर्जितम् ॥ ५० ॥

और निरंतर प्रातःकाल उठकर परपाक में रत हो और गृहस्थ धर्म में जो ब्राह्मण हो और दान से वर्जित हो अर्थात् नले ॥

ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचः परिकीर्तितः । युगे युगे तु ये धर्मास्तेषु तेषु च येद्विजाः । ५१ ॥

धर्म तत्वके ज्ञाता ऋषियों ने उसे अपच कहा है युग२ में जो धर्म हैं और युग२ में जो द्विज हैं ॥ ५१ ॥

तेषांनिंदानकर्तव्या युगरूपाहितेद्विजाः । हुंकारंब्राह्मणस्योक्त्वात्वंकारं च गरीयसः ॥ ५२ ॥

उन ब्राह्मणों की निन्दा नहीं करनी चाहिये क्योंकि वे ब्राह्मण युग के अनुरूप हैं अत्यन्त बड़े ब्राह्मण को हुंकार और त्वंकार (हूं वा तू) कहकर ॥ ५२ ॥

स्नात्वातिष्ठन्नहः शेषमभिवाद्यप्रसादयेत् । ताडयित्वातृणेनापिकंठेबध्वापिवाससा । ५३ ॥

जितना दिन शेषहो उतने दिन स्नान

कर बैठा रहै और नमस्कार करके प्रसन्न (राजी) करै तृणसेभी ब्राह्मण को ताड़नकर और ब्राह्मण के कंठ में वस्त्रभी बांधकर ॥ ५३ ॥

विवादेनापिनिर्जित्यप्रणिपत्य प्रसादयेत् । अवगूर्यत्वहोरात्रं त्रिरात्रंक्षितिपालने ॥ ५४ ॥

और ब्राह्मण को विद्यासे जीतकर नमस्कार करके प्रसन्न करे और झिटककर अहोरात्र और पृथ्वीपर गिरा कर त्रिरात्र उपवास ॥ ५४ ॥

अतिकृच्छ्रं च रुधिरे कृच्छ्रो भ्यंतरशोणिते । नवाहमतिकृच्छ्रः स्यात्पाणिपूरान्नभोजनः ॥५५॥

और रुधिर निकालनेपर अतिकृच्छ्र और रुधिर न निकाले तौ कृच्छ्र करे-जो नौ दिनतक अंजलि भर अन्न खाया जाता है वह अतिकृच्छ्र होता है ॥ ५५ ॥

त्रिरात्रमुपवासःस्यादतिकृच्छ्रः सउच्यते । सर्वेषामेवपापानांसंकरे समुपस्थिते ॥ ५६ ॥

वा तीन रात उपवास करै उसे अति कृच्छ्र कहतेहैं यदिसब पापोंका संकर होजायतो ॥ ५६ ॥

दशसाहस्र मभ्यस्ता गायत्री शोधनं परम् ।

दश हजार गायत्रीका अभ्यास परम शुद्धि करनेवाला है ॥ ५७ ॥

इति पाराशरीये धर्म्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः

इतिपाराशरीयेधर्मशास्त्रे भाषाटीकायां एकादशोऽध्याय

दुःस्वप्नंयदिपश्येत्तुवांतेवाक्षौर कर्मणि । मैथुनेप्रेत धूम्रेच स्नान मेवविधीयते ॥ १ ॥

वमन, क्षौरकर्म, मैथुन, प्रेतका धुआँ इनका स्वप्न देखे तौ स्नान कहा है १

अज्ञानात्प्राश्यविण्मूत्रंसुरासं- स्पृष्टमेवच । पुनः संस्कारमर्हंति त्रयोवर्णाद्विजातयः ॥ २ ॥

अज्ञानसे विष्ठा, मूत्र और जिस में मदिरा मिलीहो उसको खाकर तीनों द्विजाति फिर संस्कार के योग्य होतेहैं २

अजिनं मेखला दंडोभैक्षचर्या- व्रतानिच । निवर्त्तंतेद्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥ ३ ॥

द्विजातियों के फिर (दुबारा) संस्कार कर्म में मृगछाला (मूंजकी) कोंदनी दण्ड, भिक्षाका मांगना ये सब निवृत्त होजाते हैं ॥ ३ ॥

विण्मूत्रस्यचशुद्ध्यर्थंप्राजापत्यं समाचरेत् । पंचगव्यंच कुर्वीत- स्नात्वापीत्वाशुचिर्भवेत् ॥ ४ ॥

विष्ठा और मूत्र इनको खाकर प्राजापत्य करै और पंचगव्य बनावे स्नान करके पंचगव्यको पीकर शुद्ध होताहै ४

यत्तद्भ्यां च डतिं केचिदिच्छन्तीति प्रदर्शितम् ॥

डाजव्यक्तानुकृतेरनितौ द्व्यजवदर्धतः ।
द्वितीयाच्च तृतीयाच्च शम्बबीजात् कृषौ स्मृतः ॥

कृञो योग इति प्रोक्तं संख्यायाश्च गुणान्ततः ।
समयाद् यापनायां च निष्कोषे चैव निष्कुलात् ॥

निष्पत्राच्च सपत्राच्च तथातिव्यथने मतः ।
सुखप्रियादानुलोम्ये शूलात् पाके च कीर्तितः ॥

प्रातिलोम्ये तु दुःखाच्च सत्यादशपथे स्मृतः ।
मद्रभद्राद् वापनेऽर्थे डाच्प्रत्यय उदाहृतः ॥

स्यादवान्तरदीक्षादेश्चरतीत्यर्थके डिनिः ।
प्रमाणे शन्शदन्ताच्च विंशतेश्च डिनिः स्मृतः ॥

अग्रपश्चाड्डिमच् प्रोक्तो जाताद्यर्थे मनीषिणा ।
ह्रस्वार्थके च सम्प्रोक्तः कुत्वास्तु प्रत्ययो डुप्च् ॥

तदस्मिन्नस्तिनिर्वृत्तनिवासादूरसम्भवाः ।
एष्वर्थेषु ड्मतुप् प्रोक्तः कुमुदान्नडवेतसात् ॥

ड्यड्ड्यतौ प्रत्ययौ दृष्टे वामदेवादिति स्मृतम् ।
अप्रसिद्धादपत्यार्थे पाण्ड्वोड्यण् समुदाहृतः ॥

राजार्थकेऽपि संप्रोक्तस्तथैष प्रत्ययो बुधैः ।
चातुरर्थिकशब्दाच्च नडशादाड्ड्वलच् स्मृतः ॥

ड्वुन्प्रत्ययस्त्वसंज्ञायां विंशतेस्त्रिंशतश्च सः ।
अष्टाचत्वारिंशतश्च चरतौ परिकीर्तितः ॥

इवार्थे तु शिलायाश्च ढप्रत्यय उदाहृतः ।
अपत्यार्थे प्रत्ययो ढक् भवेत् स्त्रीप्रत्ययान्ततः ॥

द्व्यज्भ्यः स्त्रीलिङ्गशब्देभ्य अनिञन्तादितस्तथा ।
काश्यपे दत्तपुत्रे तु विकर्णाच्च कुषीतकात् ॥

140

शुभ्रादिभ्यो भ्रुवश्चापि कल्याण्यादेस्तथैव च ।
मातृष्वसृपदात् तद्वत् पितृष्वसृपदात् तथा ॥

कुलटाया विकल्पेन दुष्कुलाच्च विधीयते ।
दृष्टेऽर्थे कलिशब्दाच्च ढगग्नेर्देवतार्थके ॥

नद्यादिभ्यस्तथा प्रोक्तो जाताद्यर्थे विपश्चिता ।
तूदीशब्दादभिजने कापिशात्योस्तु कर्मणि ॥

धान्यानां भवने क्षेत्रे व्रीहिशाल्योरपीष्यते ।
ढकञावपत्यमित्यर्थे स्यादपूर्वपदात् कुलात् ॥

कन्यादिभ्यस्तु जातादौ वहत्यर्थे धुरस्तथा ।
कुलात् कुक्षेश्च ग्रीवाया श्वास्यलङ्कारकेऽर्थके

अपत्यार्थे चतुष्पाद्भ्यो ढञ्प्रत्यय उदाहृतः ।
गृष्ट्यादिभ्यस्तथैवेष्टोऽचतुष्पाद्वचनेऽपि च ॥

संस्कृते क्षीरशब्दाच्च संख्यादेश्चतुरर्थकात् ।
कोशशब्दाच्च सम्भूते दृत्यादेस्तु भवार्थतः ॥

एणीपदाद् विकारेऽर्थे निवासे कर्मलोधदात् ।
पथ्यादिभ्यस्तु साध्वर्थे हितादौ पुरुषात् स्मृतः ॥

तदस्य सम्भवेदर्थे पारिखाश्च कीर्तितः ।
अधीते वेद इत्यर्थे ढिनुक् छगलिनः स्मृतः ॥

अपत्यार्थे तु गोधाया ढ्रक्प्रत्यय उदाहृतः ।
अपत्ये कुत्सिते वाच्ये स्मृतो णप्रत्ययः किल ॥

फाण्टाहृतेश्च मिमतान्मतः सौवीरगोत्रभात् ।
अरण्यात्तु भवेऽर्थेऽपि णप्रत्यय उदाहृतः ॥

क्रीडायां च प्रहरणे र्थे शीले छत्रादितो मतः ।
लब्धार्थे त्वन्नशब्दाच्च साध्वर्थे भक्तशब्दतः ॥

हितार्थे सर्वशब्दाच्च गच्छत्यर्थे पथश्च हि ।
यथाकथाचशब्दाच्च देयेऽर्थे च स्मृतो बुधैः ॥

प्रज्ञाश्रद्धादिशब्देभ्यो मत्वर्थे च तथा स्मृतः ।
समूहार्थे तु पर्शोश्च णस्प्रत्यय उदाहृतः ॥

पुराणप्रोक्तकल्पेषु ब्राह्मणेषु णिनिः स्मृतः ।
अधीते वेद इत्यर्थे काश्यपात् कौशिकादपि ॥

कलापिशब्दात् तद्वत् स्यात् वैशम्पायनशिष्यतः ।
वेदे वाच्ये शौनकादेः पाराशर्यशिलालितः ॥

नटसूत्रे भिक्षुसूत्रे वाच्ये तु णिनिरिष्यते ।
कुर्वादिभ्यो ण्य एव स्यादपत्यार्थे इतीरितम् ॥

सेनान्तालक्षणाच्चापि कारिणः कुर्वादितः ।
प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु दित्यादिभ्यो विधीयते ॥

सङ्काशादेश्च संप्रोक्तो अस्त्यर्थादिचतुष्टये ।
साध्वर्थे समवैत्यर्थे प्रोक्तः परिषदो हि सः ॥

भूतार्थे चैव षण्मासाण्ण्यत् प्रत्यय उदाहृत ।
तदस्यास्तीति चार्थे तु केशेभ्यां च त ईरितः ॥

स्वार्थे नवात् तनन् प्रोक्तो नूमाधः प्रकृतेरपि ।
मत्वर्थे चापि तप्प्रोक्तः पर्वणो मरुतश्च हि ॥

तमप् तु स्यादतिशये तिङन्ताच्च विधीयते ।
सोऽस्यावयव इत्यर्थे संख्यायास्तय बिष्यते ॥

विभज्योपपदे द्व्यर्थक्ये तरबिष्यते ।
समूहार्थे ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् तथा गजात् ॥

सहायाच्च तथा स्वार्थे देवात् भावेऽपि कीर्तितः ।
तेनैकदिगितीहार्थे तसिश्च परिकीर्तितः ॥

तथापादानपञ्चम्याः स्मृतोऽहीयरुहोस्तु सः ।
अकर्त्र्यर्थतृतीयाया अप्यर्थ प्रत्ययो मतः ॥

अतिग्रहे चाव्यथने क्षेपे च परिकीर्तितः ।
तथैव हीयमाने च पापयोगे च संस्मृतः ॥

है वह मूढ़ बड़ा पापी और ब्रह्महत्यारा कहाहै ॥ ३९ ॥

भाजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्तिकुर्वंति ये द्विजाः । न देवास्तृप्तिमायान्ति निराशाः पितरस्तथा ॥ ४० ॥

भोजन करते हुए जो ब्राह्मण स्वस्ति (कल्याणहो) कहतेहैं उसपर देवता तृप्त नहीं होते और पितरभी निरास होजातेहैं ॥

अस्नात्वा वै न भुंजति अजश्वाग्निमपूज्य च । न पर्णपृष्ठे भुंजीत रात्रौ दीपं विनातथा ॥ ४१ ॥

विना स्नान किये, और विना अग्नि पूजे, भोजन न करै और पत्ते की पीठ पर और रात्रि में दीपक के बिना भोजन न करै ॥ ४१ ॥

ग्रहस्थस्तु दयायुक्तोधर्ममेवानुचिंतयेत् । पोष्यवर्गार्थसिद्ध्यर्थं न्यायवर्ती स बुद्धिमान् ॥ ४२ ॥

दया वाला गृहस्थ धर्म की ही चिन्ता करै अपने पोष्यवर्ग (पुत्र वा भृत्य आदि) इन के प्रयोजन सिद्धि के लिये बुद्धिमान् सदैव न्यायसे वर्त्ते ॥ ४२ ॥

न्यायोपार्जितवित्तेन कर्तव्यं ह्यात्मरक्षणम् । अन्यायेन तु योजीवेत्सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ ४३ ॥

न्यायसे संचय किये द्रव्य से अपनी रक्षा करनी जो अन्याय से जीताहै वह सब धर्मों से वाहर (अनधिकारी) है ४३

अग्निश्चित्कपिलासत्री राजाभिक्षुर्महोदधिः दृष्टमात्राः पुनंत्येते तस्मात्पश्येत्तु नित्यशः ॥ ४४ ॥

अग्नि की चित्ति (होम) जो करै कपिलागौ, यज्ञ करने वाला राजा, भिक्षुक, समुद्र, यह देखने से ही पवित्र करते है तिससे इन को नित्य देखै ॥ ४४ ॥

अरणिं कृष्णमार्जारं चंदनं सुमणिंघृतम् । तिलान्कृष्णाजिनं छागं ग्रहे चैतानि रक्षयेत् ॥ ४५ ॥

अरणि, काला विलाव, चंदन, उत्तममणि, घी, काली मृगछाला, बकरी, इन की घर में रक्षा करै ॥ ४५ ॥

गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितम् । तत्क्षेत्रं दशगुणितं गोचर्मपरिकीर्तितम् ॥ ४६ ॥

जहां सौ गौ और एक वैल ये दश गुने अर्थात् दशहजार गौ और दशवैल विना वांधे टिके, उस क्षेत्र को गोचर्म कहतेहैं ॥ ४६ ॥

ब्रह्महत्यादिभिर्मर्त्योमनोवाक्कायकर्मभिः । एतद्गोचर्मदानेन मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ४७ ॥

इस गोचर्ममात्र भूमि के दान से मनुष्य मन वाणी देह और कर्मों से किये ब्रह्महत्या आदि पापों से छूटताहै ॥ ४७ ॥

कुटुंबिने दरिद्राय श्रोत्रियाय विशेषतः । यद्दानं दीयते तस्मै तद्दानं शुभकारकम् ॥ ४८ ॥

कुटुम्बी, दरिद्र, विशेषकर, वेदपाठी इनको जो दान दिया जाताहै वही शुभ का करने वालाहै ॥ ४८ ॥

बापिकूपतडागाद्यैर्वाजपेयशतैर्मखैः। गवांकोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुद्धयति ॥ ४६ ॥

भूमि का हरने बाला मनुष्य बावड़ी-कूप तालाव आदि से और सौ१०० बाजपेय यज्ञोंसे और कोटि गौ देनेमे भी शुद्ध नहीं होता ॥ ४९ ॥

अष्टादश दिनादर्वाक्स्नानमेव रजस्वला। अतऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्यादुशनानामुनिरब्रवीत् ॥ ५० ॥

यदि जो दर्शनसे अठारवें दिन से पहिले आगे कहे चांडाल आदि का स्पर्श रजस्वला स्त्री करे तो स्नानहीकरै और अठारह दिन से आगे तीनरात उपवास करै यह उशना मुनिने कहाहै।२०

युगयुगद्वयंचैव त्रियुगं च चतुर्युगम्। चांडालसूतकोदक्या पतितानामधः क्रमात् ॥ ५१ ॥

चार दिन आठ दिन बारह दिन सोलह दिन क्रमसे चांडाल सूतिका रजस्वला पतित रजस्वला इनके ॥ ५१ ॥

ततः सन्निधिमात्रेण सचैलं स्नानमाचरेत्। स्नात्वावलोकयेत्सूर्यमज्ञानात्स्पृशते यदि।५२।

समीप रहै तो वस्त्रोंसहित स्नान करै यदि अज्ञानसे स्पर्शभी करले तो स्नान करके सूर्य का दर्शन करे ॥ २५ ॥

विद्यमानेषु हस्तेषु ब्राह्मणोऽज्ञानदुर्बलः। तोयं पिबति वक्त्रेण श्वयोनौ जायते ध्रुवम् ॥ ५३ ॥

हाथों के विद्यमान रहते जो अज्ञानी ब्राह्मण पात्रमें मुख लगाकर जल पीता है वह निश्चय करके कुत्तेकी योनि में पैदा होता है॥ ९३ ॥

यस्तु क्रुद्धः पुमान्ब्रूयाज्जायां यस्तु अगम्यताम्।पुनीरिच्छतिचेदेनां विप्रमध्ये तु श्रावयेत्॥५४॥

जो मनुष्य क्रोध में आकर अपनी स्त्रीको ऐसा कहै तू मेरे गमन करने के योग्य नहींहै और फिर उस स्त्रीकी इच्छा करै तो इसबात को ब्राह्मणोंको सुनादेय ॥ ९४ ॥

श्रांतः क्रुद्धस्तमोंधोवा क्षुत्पिपासा भयार्दितः। दानं पुण्यमकृत्वा वा प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥ ५५ ॥

थका-वा क्रोधी अज्ञानसे अन्धा क्षुधा और प्यास से दुःखी वह ब्राह्मण दान और पुण्य न करै तो तीन दिन प्रायश्चित्त करै ॥ ९५ ॥

उपस्पृशेत्त्रिषवणं महानद्युपसंगमे। चीर्णाते चैव गां दद्याद्ब्राह्मणान्भोजयेद्दश ॥ ५६ ॥

और त्रिकाल महानदी (गङ्गाआदि) के संगम (मेल) में स्नान और आचमन करै और प्रायश्चित्त किये पीछे भि-

काल गोदान करै और दश ब्राह्मण जिमावे ॥ ५६ ॥

दुराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च। अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्याद्दिनमेकमभोजनम् ॥ ५७ ॥

दुराचारी और निषिद्ध आचरण के करने वाले ब्राह्मण के अन्न को खाकर द्विज एक दिन भोजन न करै ॥ ५७ ॥

सदाचारस्य विप्रस्य तथा वेदांगवेदिनः। भुक्त्वान्नं मुच्यते पापादहोरात्रांतरान्नरः ॥ ५८ ॥

उत्तम आचरण का कर्त्ता और वेदांत का जानने वाला ब्राह्मण के अन्न को खाकर मनुष्य अहोरात्र के अन्तर में पाप से छूटताहै ॥ ५८ ॥

ऊर्ध्वोच्छिष्टमधोच्छिष्टमन्तरिक्षमृतौ तथा। कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचमरणे तथा ॥ ५९ ॥

ऊर्ध्व (बड़े) के उच्छिष्ट को वा अधः (छोटे) के उच्छिष्ट को और अन्तरिक्ष में जो मरै उसके अशौच के अन्नको और मृतकके अशौच भोजन को खाकर तीन कृच्छ्र व्रत करै ॥ ५९ ॥

कृच्छ्रं देव्ययुतं चैव प्राणायामशतद्वयम्। पुण्यतीर्थेनार्द्रशिराः स्नानं द्वादशसंख्यया ॥ ६० ॥

दश हजार गायत्री—दो सै प्राणायाम—और पवित्र तीर्थ में बारह वार शिर भिगोकर स्नान, ये एक कृच्छ्रका फल देते है ॥ ६० ॥

द्वियोजनं तीर्थयात्रा कृच्छ्रमेकं प्रकल्पितम्। गृहस्थः कामतः कुर्याद्रेतसः स्खलनं यदि ॥ ६१ ॥

और दो योजन तक तीर्थ की यात्रा को भी एक कृच्छ्र मानाहै—यदि गृहस्थी पुरुष अपने वीर्य को गिराताहै ॥ ६१ ॥

सहस्रं तु जपेद्देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिः सह। चतुर्विद्योपपन्नस्तु विधिवद्ब्रह्मघातके ॥ ६२ ॥

वह तीन प्राणायाम करे और एक हजार गायत्री जपै विधि से जो चारों विद्याओंसे युक्तहो और ब्रह्महत्या करे तो॥

समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित्तं समादिशेत् ॥ ६३ ॥ सेतुबंधपथे भिक्षां चातुर्वर्ण्यात्समाचरेत् ॥ वर्जयित्वा विकर्मस्थान् छत्रोपानहवर्जितः। अहंदुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः ॥ ६४ ॥

उसे सेतुबंधरामेश्वरपर जाना प्रायश्चित्त बतावे और वह सेतुबंध के मार्ग में चारों वर्णों से भिक्षा मांगे ॥ ६३ ॥ कुमार्गियों को छोड़ दे और छत्री जूता न रक्खै—और ऐसे कहै कि मैं खोटे कर्म का करने वाला और महापातकी हूं ६४

गृहद्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः। गोकुलेषु वसेच्चैव ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ६५ ॥

मैं ब्रह्महत्यारा भिक्षा के लिये तुम्हारे घर के द्वारपर खड़ा हूं और गोशाला ग्राम नगर इन में बसे ॥ ६५ ॥

तपोवनेषु तीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु च । एतेषु ख्यापयेन्नैनः पुण्यं गत्वा तु सागरम् ॥ ६६ ॥

तपोवनों में तीर्थों में नदी के जहां प्रवाहहों वहां इन में अपने पाप को जताता हुआ पवित्रसागर पर जाकर ॥ ६६ ॥

दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् । रामचन्द्रसमादिष्टं नलसंचयसंचितम् ॥ ६७ ॥

दशयोजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा रामचन्द्रजी के कहने से नल वानर के बनाए हुये ॥ ६७ ॥

सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति। सेतुं दृष्ट्वा विशुद्धात्मा त्ववगाहेत सागरम् ॥६८॥

समुद्र के सेतु को देखकर ब्रह्महत्या को दूर करता है, सेतु को देख विशुद्ध मन होकर सागर में स्नान करै ॥६८॥

यजेत वाश्वमेधेन राजा तु पृथिवीपतिः। पुनः प्रत्यागतोवेश्मवासार्थमुपसर्पति ॥ ६९ ॥

और पृथ्वीका पति राजा ब्रह्महत्या करै तो अश्वमेधयज्ञ करै फिर लौटकर घर में वास करने के लिये आवै ॥ ६९

सपुत्रः सहभृत्यश्च कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । गाश्चैवैकशतं दद्याच्चातुर्विद्येषु दक्षिणाम् ॥७० ॥

पुत्र और भृत्यों समेत ब्राह्मणों को जिमावे और चार विद्यावाले ब्राह्मणों को सौ १०० गौ दक्षिणा दे ॥ ७० ॥

ब्राह्मणानां प्रसादेन ब्रह्महातु विमुच्यते। विंध्यादुत्तरतोयस्य संवासः परिकीर्तितः ॥ ७१ ॥

ब्राह्मणोंकी प्रसन्नता से ब्रह्महत्या से छूटजाताहै विन्ध्याचलसे उत्तर जो बसता है ॥ ७१ ॥

पराशरमतं तस्य सेतुबंधस्यदर्शनात् । सवनस्थां स्त्रियं हत्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥ ७२ ॥

इसे पराशर ऋषिने सेतुबंध का दर्शन कहाहै - प्रसूति में, टिकी स्त्रीको मारकर ब्रह्महत्या में कहेहुए व्रत को करै ॥७२॥

सुरापश्च द्विजः कुर्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम् । चांद्रायणे ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ ७३ ॥

मदिरा पीनेवाला द्विज समुद्र में जाने वाली नदी पर जाकर चांद्रायण व्रत करके ब्राह्मणोंको जिमावे ॥ ७३ ॥

अनडुत्सहितां गां च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम्। सुरापानं सकृत्कृत्वा अग्निवर्णां सुरां पिबेत् ॥ ७४ ॥

एक बैल सहित एक गौ ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे—एक बार मदिरा को पीकर

अग्नि के समान है रंग जिसका (अत्यन्त उष्ण) ऐसी मदिरा को जो पीवे ७४

सपावयेदिहात्मानमिहलोके परत्र च। अपहृत्य सुवर्णन्तु ब्राह्मणस्य ततः स्वयम् ॥ ॥ ७५ ॥

वह इस लोक और परलोक में अपने आत्मा को पवित्र करै ब्राह्मणके सुवर्ण को चुराकर आपही ॥ ७९ ॥

गच्छेन्मुशलमादाय राजानं स्ववधाय तु। ततःशुद्धिमवाप्नोति राज्ञा सौमुक्तएव च ॥ ७६ ॥

मूसल को अपने मारने के लिये लेकर राजा के समीप जाय, फिर राजा से मरकर यह शुद्ध होताहै और मुक्ति को भी प्राप्त होताहै ॥ ७६ ॥

कामतस्तु कृतं यत्स्यान्नान्यथा-बधमर्हति। आसनाच्छयनाद्यानात्संभापात्सहभोजनात्॥ ७७ ॥

यदि जानकर कर्म होय तो मारने के योग्यहै अन्यथा नहींहै एक जगह आसन से-सोने से. गमन से, बोलने से ॥

संक्रामंतीह पापानि तैलबिंदूरिवांभसि। चांद्रायणं यावकं च तुलापुरुषएव च ॥ ७८ ॥

इस प्रकार पाप लगते है जैसे जल में तेलकी बूंद-चांद्रायण-यावक (जौं कोही खाना) और तुलापुरुष ॥७८॥

गवां चैवानुगमनं सर्वपापप्रप्रणाशनम्। एतत्पाराशरं शास्त्रं श्लोकानां शतपंचकम् ॥ ७९ ॥

गौओं के पीछे गमन ये सब पापों को नाश करने वाले है यह पराशर ऋषि का कहा धर्मशास्त्र जिस में पांचसौ ५०० ॥ ७९ ॥

द्विनवत्या समायुक्तं धर्मशास्त्रस्य संग्रहः। यथाध्ययनकर्माणि धर्मशास्त्रमिदं तथा ॥८०॥

वानवे ९२ श्लोकहैं और धर्मशास्त्र का यह संग्रह (इकट्ठा करना) है जैसे अध्ययन के कर्म हैं वैसाही यह धर्मशास्त्रहै ॥ ८० ॥

अध्येतव्यं प्रयत्नेन नियतं स्वर्गकामिना।

इतिश्रीपाराशरीयेधर्मशास्त्रेसकलप्रायश्चित्त निर्णयोनामद्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

स्वर्ग की इच्छा करने वाले पुरुषको यह यत्न से पढ़ना चाहिये ॥

इतिश्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे सकलप्रायश्चित्त निर्णयोनाम द्वादशोऽध्याय ॥ १२ ॥

समाप्तोऽयंग्रन्थः

भावे कर्मणि चाप्यर्थे स्तेनाद् यन् प्रत्ययो मतः ॥

मासान्ताद् वयसि चोत्ये द्विगोर्यप्प्रत्ययो भवेत् ।
आहतत्वप्रशस्तत्वविशिष्टाचापि रूपतः ॥

कंशंभ्यां चापि मत्वर्थे यस्प्रत्यय उदाहृतः ।
ऊर्णाशब्दात्तु मत्वर्थे युस्प्रत्यय इतीरितम् ॥

कंशंभ्यामपि तद्वत् स्यात् तथाहंशुभमोरपि ।
तदस्त्यादिचतुष्केऽर्थे त्वश्मादेस्तु र ईरितः ॥

मत्वर्थे तूषशब्दाच्च सुषिमुष्कमधोरपि ।
ह्रस्वार्थे तु कुटीशब्दाच्छमीशुण्डादपि स्मृतः ॥

अग्नीधः शरणे रण् स्याद् भत्वं चास्य प्रकीर्तितम् ।
रूपप् च प्रत्ययः प्रोक्तः प्रशंसायां च कुत्सने ॥

हेतोश्चैव नृनाम्नश्च रूप्यः स्यादागतेऽर्थके ।
षष्ठ्यन्ताद् भूतपूर्वेऽर्थे रूप्यप्रत्यय इष्यते ॥

सप्तम्यन्तादिदंशब्दात् कालेऽर्थे र्हिल् विधीयते ।
तथैवोक्तं किमादेस्तु कालेऽनद्यतनेऽपि च ॥

प्राणिस्थादात मत्वर्थे लच्प्रत्यय इतीरितम् ।
क्षुद्रजन्तूपतापेभ्यः सिध्मादिभ्यस्तथैव च ॥

वत्सांसाभ्यां कामवति बलस्यर्थे [illegible] ।
मत्वर्थे चापि केशाद् वो मतोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥

गाण्डीशब्दादजगचात् [illegible] विधीयते ।
तुल्यत्वे तु क्रियायाश्च वतिप्रत्यय ईरितः ॥

गुणादिभिश्च तुल्यत्व इवार्थे तत्र [illegible] च ।
अर्हत्वेऽपि क्रियायाश्च वतिप्रत्यय ईरितः ॥

वतुप् स्याद् यत्तदेतेभ्यः परिमाण इतीरितम् ।
माने वाच्ये द्रुशब्दाच्च वयप्रत्यय ईरितः ॥

देशे वाच्ये [illegible] च [illegible]प्रत्यय इष्यते ।